युवा चेतना की जरुरी किताब

आधारशिला



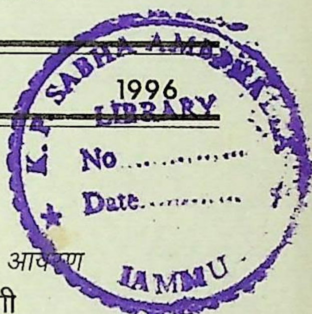
इंसाफ लोगों की रोटी है
जिस तरह रोटी की रोज जरुरत है
उसी तरह न्याय की भी
बल्कि इसकी जरुरत दिन में कई बार होती है।
काम करते हुए ,सुबह से रात तक
बुरे समय में ,और अच्छे समय में
लोगों को पर्याप्त मात्रा में
रोजाना न्याय की स्वास्थ्यवर्धक रोटी की जरुरत होती है।
चूंकि यह न्याय की रोटी का मामला है,
यह अति महत्वपूर्ण है
कि कौन दोस्त इसे सेकेंगे ?
दूसरे की रोटी कौन सेंकता है
दूसरे की रोटी की तरह ही
न्याय की रोटी भी
जनता द्वारा सेंकी जानी चाहिए।
पर्याप्त; स्वास्थ्यवर्धक,रोजाना।

बर्टोल्ट ब्रेख्त

आधारशिला

(युव चेतना की जरूरी किताब)

वर्ष 12 अंक -16 1996



संपादक
'दिवाकर'

सौजन्य सम्पादक
डॉ० मुकुल पंत

उप संपादक
कमल पाण्डे
पंकज जोशी
जोगेन्द्र बिष्ट
दीनू विनीता
दिनेश गोस्वामी

अंक चित्र एव आवरण
बी० मोहन नेगी
की कलाकृतियां

कला संपादन
अशोक पाण्डे

संपादकीय कार्यालय
दड़ा मुखानी, हल्द्वानी
नैनीताल–२६३ १३६ (भारत)

अल्मोड़ा कार्यालय
रानीधारा अल्मोड़ा
(उत्तराखण्ड)

एक प्रति पंद्रह रूपये
वार्षिक सौ रूपये
(वार्षिक से आशय छः अंक)
आजीवन – पांच सौ

क्रम

पत्रांश

राष्ट्रभाषा का प्रश्न जहाँ का तहाँ........

"आधारशिला" का अंक पिछले दिनों मिला। 'उत्तराखण्ड' आन्दोलन से सम्बन्धित 'गिर्दा' और नरेन्द्र सिंह नेगी की कविताएं बहुत अच्छी लगीं। इस आन्दोलन के सांस्कृतिक पक्ष को ज्यादा जानने की उत्सुकता मन में बनी रहती है। भाषा के सवाल पर बटरोही का आलेख विचारोत्तेजक है। गाँधी हिन्दुस्तानी के पक्षधर थे। आज पचास साल बाद भी भाषा का प्रश्न जहाँ–का–तहाँ है। जो हिन्दी की बात करते हैं, वे क्षेत्रीय भाषाओं के अस्तित्व को लेकर उस तरह नहीं सोचते। हिन्दी वाले साम्राज्यवादी नीति को छोड़े और विभिन्न भारतीय भाषाओं के बीच पुल बनाने की दिशा में तेजी से काम करें। हमारे यहाँ अनुवाद की भी स्वस्थ परम्परा नहीं है। हम बहुत कम जानते हैं कि कन्नड़, मलयालम, असमिया या दूसरी क्षेत्रीय भाषाओं में क्या महत्वपूर्ण लिखा जा रहा है ...... मैं बटरोही जी की इस बात से सहमत हूँ, कि, पराई भाषा में सिर्फ औपचारिक बातें हो सकती हैं। चिन्तनीय यह भी है कि हिन्दी बोलियों से दूर होती जा रही है।

सुधीर विद्यार्थी
सदर बाजार, शाहजहाँपुर

'आधारशिला' मिली। राष्ट्रभाषा पर बटरोही का लेख विचारोत्तेजक है इस पर बाद में लिखूंगा। पत्रिका अच्छी निकल रही है।

डॉ विजय राघव रेड्डी
हैदराबाद (आन्ध्र)

'आधारशिला' १२/१३ प्राप्त हुई। पत्रिका की सामग्री, आज भी चिंताओं की सामाजिक विषमताओ को रेखांकित करती है। कविता कहानी लेख आदि का संतुलन अच्छा है, और बीच–बीच में खलील जिब्रान की सर्वाधिक चर्चित लघुकथाएं। उम्मीद है आधारशिला आगे को भी अच्छे अंक देगी।

हरीश चन्द्र पाण्डे
इलाहाबाद

'आधारशिला' मिली। पहाड़ से निकलने वाली 'आधारशिला' रचनाओं व गैटअप की दृष्टि से राष्ट्रीय पत्रिकाओं से कहीं कम नहीं, ऐसी सुन्दर व अपने में पूर्ण पत्रिका के प्रकाशन हेतु आप बधाई के पात्र हैं, आपका यह प्रयास निरन्तर, जनचेतना की ओर अग्रसर हो, शुभकामनाएं हैं।

बी० मोहन नेगी
पौड़ी गढ़वाल

'आधारशिला' मिली और आपका पत्र भी। 'आधारशिला' को नियमित प्रकाशन कर रहे हैं। इसके लिए शुभकामनाएं।

गिरिराज किशोर
कानपुर

'आधारशिला' का अंक मिला। अंक की सभी रचनाएं अच्छी एवं उद्वेलित करने वाली हैं। राष्ट्रभाषा का मुददा उठाकर बटरोही ने इस पर बहस की आवश्यकता को सोचने पर प्रेरित किया है। लीलाधर जगूड़ी की कविता सोचने को विवश करती है।

यश मालवीय
इलाहाबाद

बात की बात

बीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में मौजूदा देशकाल और परिस्थितियों से गुजरते हुए बीते समय का सिहावलोकन करने पर हमारे साथ की रचनाशील युवा पीढी को समाज व्यवस्था की जो तस्वीर नजर आ रही है। उसे देखते हुए एक ही प्रश्न दिमाग पर हांट करता है कि देश आज राजनैतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक पतन के जिस दौर से गुजर रहा है क्या उसके लिए मात्र राजनीतिगत व्यवस्था ही जिम्मेदार है?

बिना लाग लपट व स्वयं को जिम्मेदारी से बचाने की कोशिश न हो तो हम कह सकते हैं कि इसके लिए समाज के रचनाकर्म से जुड़े लोग व देश का वह प्रबुद्ध वर्ग भी सीधे-सीधे जिम्मेदार है जो अपने रचना कर्म व इससे इतर अपने व्याख्यानों में यह कहता रहता है कि व्यवस्थागत विसंगतियों से साहित्य का कुछ लेना देना नहीं। यह तो लेखक या रचनाकर्मी की एकान्त व निजी अनुभूति होती है। जिसे वह रचना के रूप में अभिव्यक्ति देता है। यह मानते हुए भी हमें अपनी बात कहने में कोई सकोच नहीं कि अपनी इस दलील से रचनाकर्मी अपने बचाव की कोशिश ही करते हैं जबकि आज की दल-दल हो चुकी व्यवस्था के विरुद्ध वे अपने माध्यम से इतर जनता में बहस ले जा सकते हैं और उस पर चोट कर सकते हैं। अपने सृजन को आम जनता का हथियार बनाने के परहेज से ही आज रचनाकर्मी की इस व्यवस्था में कितनी आवाज रह गयी है यह किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं।

साहित्य, कला किसी लेखक व कलाकार की नितान्त सृजनात्मक एकान्त की निजी अनुभूति होने के बावजूद उसकी सामाजिक सोदेश्यता समाप्त नहीं हो जाती। एक रचनाकर्मी अपनी रचना की सामाजिक उपयोगिता न तो नज़र अन्दाज ही करता है और न ही कर सकता है। वरना समकालीन सृजन जैसी बात रचनाकर्म में आती ही नही। स्वान्ताय सुखाय के लिए किए जाने वाले सृजन के भी सामाजिक सरोकार हैं। तभी सृजक लिखता है नहीं तो रचना कहता और बस कहता रहता, लिखता नहीं। इस देश की व्यवस्था परिवर्तन में साहित्य की भूमिका पर नये सिरे से आज बहस की जरूरत है।

इस परिप्रेक्ष्य में चर्चित कथाकार व पहल के संपादक ज्ञानरंजन का यह कहना प्रासंगिक नहीं है कि यह समय सर्वाधिक घने अंधकार का है ऐसे में साहित्यकार की विशिष्ट सक्रियता की आवश्यकता है। जीवन में तटस्थ या

निरपेक्ष रहकर मात्र रचनाओं में पक्षधरता जताने का यह समय नहीं है। जाहिर है उनका आशय लेखन के साथ--साथ जीवन में व्यवस्थागत परिवर्तन लिए लेखक के सक्रिय रहने से ही है।

नीत्शे ने लेखन के सामाजिक सरोकारों को लेकर जो बात कही है वह लेखक के लेखन का 'सम' है। नीत्शे कहते हैं। अब तक जो कुछ भी लिखा गया है। उसमें से मैं सिर्फ उसे ही प्यार करता हूं जो रक्त से लिखा गया है, क्योंकि रक्त से लिखे हुए में ही आत्मा की तलाश की जा सकती है। जो रक्त से लिखता है उसकी बात पढी नहीं दिल में उतारी जाती है।

नीत्शे का यह कथन व्यवस्थागत परिवर्तन में साहित्य व साहित्यकार की भूमिका को लेकर ही है। जैसा कि कहा जाता है व्यवस्था परिवर्तन में साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका है। इस परिवर्तन के लिए साहित्य व साहित्यकार आज क्या कर सकते हैं? इस पर सोचने व कार्य करने की आवश्यकता है। इस बात को संपादकीय में उठाकर बहस शरू की जा रही है।

हां इस कठिन दौर में इसी बात की बात के लिए ही 'आधारशिला' के नियमित प्रकाशन का निर्णय लिया गया है। यह सोचकर कि रचनाकर्मी व पाठक इसके लिए 'आधारशिला' को अपना सदाशयी सहयोग देते रहेंगे।

'दिवाकर'



लेखक की स्वायत्तता का सवाल

बटरोही

'स्वायत्तता' शब्द मैंने सबसे पहले अपने विश्वविद्यालय के प्रथम कुलपति भौतिक विज्ञानी डॉ. देवीदत्त पंत के मुँह से सुना लेकिन समझ में बहुत बाद में आया-- चेक गणराज्य के वर्तमान राष्ट्रपति वात्सलाव हावेल का लेख, 'शब्द के बारे में दो शब्द' पढ़कर।

एक लेखक होने के नाते मुझे हमेशा महसूस होता था कि लेखक के पास अपनी एक स्वायत्त दुनिया अवश्य होनी चाहिए, जो शायद मौजूदा दुनिया की करीब–करीब उल्टी होती होगी। दस वर्ष की उम्र में अपने निहायत पिछड़े हुए गॉव से ऐसी ही एक दुनिया को लेकर मैं इस नई दुनिया में आया था, लेकिन जब भी मैंने अपनी दुनिया की बातें दूसरों से करनी चाहीं, या तो उन्हें समझा नहीं गया या उनका मखौल उड़ाया गया। हिन्दी की जिस नई साहित्यिक दुनिया में मैंने कदम रखा, यह अविश्वासों और निहायत निजी सरोकारों की एक दुनिया थी, जहॉ हरेक बात का व्यंग्यार्थ ग्रहण किया जाता था। धीरे–धीरे हमारी लेखकीय दुनिया में शब्द का मूलार्थ तो दबता चला गया और व्यंग्यार्थ मुख्य हो गया।

जिन दिनों नोबेल पुरस्कार प्राप्ति वैज्ञानिक आचार्य सी.बी. रमन के शिष्य हमारे कुलपति डॉ. देवीदत्त पंत स्वायत्तता के मसले को लेकर तत्कालीन कुलाधिपति एम. चेन्ना रेड्डी से लड़ रहे थे, उन दिनों उनके इस कार्य के सम्बन्ध में भी, कई लोग, हिन्दी लेखकों की तरह, टिप्पणी कर रहे थे– 'ये सब और कुछ नहीं, अपने लिए कुलपति का एक और टर्म लेने के लिए जनाधार बनाया जा रहा है।'

दरअसल, एक हिन्दी लेखक होने के नाते मेरे दिमाग में स्वायत्तता का कुछ और ही अर्थ था। करीब बीस–पच्चीस वर्ष पूर्व जब मैंने पत्र–पत्रिकाओं में लिखना शुरू किया था, उन दिनों (आज भी) पत्रिकाओं के द्वारा यह कहा जाता था कि पत्रिका के अनुरूप ही रचना भेजें। हिन्दी की चर्चित पत्र–पत्रिकाओं में जो लेख–चर्चाएँ प्रकाशित होती थी, उनमें अंग्रेजी के शब्दों– वाक्यांशों का प्रयोग किया जाता था, जो लेखक या पुस्तकें उदधृत किये जाते थे वे सभी अपरिचित विदेशी लेकिन अत्यन्त जटिल–दुरूह और आतंकित करने वाले होते थे। न वे शब्द हमारी समझ में आते थे, न लेखकों से हम खुद को जोड़ पाते थे। धीरे–धीरे हिन्दी के रचना–संसार की तरह हिन्दी प्रदेशों का समाज भी बनता चला गया। इस रूप में आज हमारा साहित्य यथार्थवादी तो अवश्य है लेकिन उससे बना यह नया हिंगरेजी समाज किसी देशी या राष्ट्रीय समाज की अस्मिता को

हम छोटे कस्बों के लेखकों के द्वारा वामपंथ एक सहज साहित्यिक संस्कार के रूप में अपना लिया गया। एक और संस्कार पनपा कि हम लोग अपनी रचनाएं पत्रिकाओं को ध्यान में रखकर लिखने लगे– 'धर्मयुग' के लिए प्रेम और पैशन की कहानी, 'कहानी' के लिए अस्तित्ववादी अकेलेपन की, 'कल्पना' के लिए शिल्प और भाषा के लिहाज से प्रयोगधर्मी कहानी और कोई लेख छपाना हो तो कठिन हिन्दी शब्दों से बचकर बीच–बीच में कुछ दुरूह अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करना। अंग्रेजी शब्दों के बिना कोई रचना किसी संस्कृत वाले पंडित की द्विवेदीयुगीन रचना दिखाई देने लगती। परिनिष्ठित हिन्दी तो सर्जनात्मक भाषा हो ही नहीं सकती थी। उसे उर्दू तर्ज पर ढला होना चाहिए या अंग्रेजी के नवीनतम मुहावरों से मुक्त।

यही कारण था कि ज्यों–ज्यों हम साहित्य के क्षेत्र में अपनी जड़ें गहराने लगे, एक दूसरे के प्रति हमारे सरोकार बदलने लगे। 'नमस्कार' के बदले 'सलाम' या 'हलो', उद्धरणों में हिन्दी कविता की जगह उर्दू शायरी का प्रयोग, यहाँ तक कि एक–दूसरे को गाली देने के लिए 'जनसंघी' शब्द का प्रयोग करने लगे। यही वजह है कि आज, अड़तालिस वर्ष की उम्र में भी कोई मुझसे 'भाजपाई' कहता है तो वह मुझे अपने लिए गाली सुनाई देती है, हालांकि 'भाजपाई' गाली है तो 'कांग्रेसी' भी गाली होनी चाहिए और 'वामपंथी' भी। लेकिन हिन्दी लेखकों के बीच ऐसा कतई नहीं है।

जिन दिनों साहित्य की दुनिया में हमने होश संभाला, 'धर्मयुग' के सम्पादक डॉ. धर्मवीर भारती को हिन्दी साहित्य के माफिया सरगना की तरह पेश किया जाता था। 'धर्मयुग' (जो उस समय की सबसे अधिक बिकने वाली पत्रिका थी) के सम्पादक की कुर्सी पर बैठा हुआ उसका सम्पादक एक ऐसे अनदेखे दैत्य की तरह था जो, जिसे चाहे साहित्य की दुनिया से गायब कर दे और जिसे चाहे रातों–रात खड़ा कर दे। उन्हीं दिनों जब हमारी कहानी 'धर्मयुग' में इस टिप्पणी के साथ कि 'धर्मयुग में यह उनकी पहली कहानी है' छपती थी तो महीनों तक हम लोग एक मायावी दुनिया के सुपरमैन हुआ करते थे। रात–अधरात टार्च जलाकर 'धर्मयुग' के उन पन्नों को देखते, जिनमें हमारी कहानी छपी रहती।

कुछ ही समय बाद राजेन्द्र यादव का एक लेख छपा, 'लेखक चला सम्पादक की चाल' जो डॉ. धर्मवीर भारती के इसी खौफनाक व्यक्तित्व की जानकारी देता था। इसी के साथ हिन्दी के कई वरिष्ठ लेखकों ने 'धर्मयुग' में लिखना बन्द कर दिया। हम छुटभयये लेखकों से भी यही अपेक्षा की जाने लगी और हमने खुद ही स्वयं को मुख्यधारा का लेखक जताने के लिए 'धर्मयुग' का बायकाट कर दिया। धीरे–धीरे इस विरोध ने व्यावसायिक पत्रिका बनाम लघुपत्रिका का रूप ले लिया और हर लेखक की अपनी जरूरतों के आधार पर लघु–पत्रिकाओं का प्रकाशन होने लगा हालांकि यह आंदोलन हिन्दी में जनता का आन्दोलन कभी नहीं बन पाया क्योंकि हिन्दी प्रदेशों का विशाल पाठकवर्ग 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'सारिका', 'दिनमान' जैसी व्यावसायिक पत्रिकाओं को ही अपनी पत्रिकाएं मानकर चलता था। 8

हमारे सामने नहीं रखता।

इसी दौर में देखते–देखते प्रगतिशील शब्द का अर्थ वामपंथी हो गया और धीरे–धीरे लेखकों की दुनिया अपने–आप में इतनी सिमटती चली गई कि वह अपने पाठक–वर्ग के बारे मे उसी तरह की हीनता का रवैया अपनाता चला गया जैसा कि भारतीय समाज में अंग्रेजी पढ़े लिखे व्यक्ति के मन में अंग्रेजी न जानने वाले के बारे में होता है। लेखक धीरे–धीरे खुद ही अपना पाठक बन गया। लेखक की ओर से इस तरह हाथ खींच लेने का परिणाम यह हुआ कि पाठक अपने हिसाब से खुद ही साहित्य लिखने लगा। जिस दिन लेखक ने खुद को पाठक बनाया, उसी दिन पाठक ने भी खुद को लेखक बना लिया। स्थिति आज इसीलिए इतने मजेदार है कि जहाँ एक ओर चेकोस्लोवाकिया का एक नाटककार अपने देश का राष्ट्रपति बनकर पूरे संसार को एक नई दृष्टि दे रहा है, दक्षिण अफ्रीका के एक काले व्यक्ति को आदर्श मानकर एक गोरा डी–क्लार्क विश्व के नये राजनीतिक समीकरण की ओर ध्यान आकर्षित कर रहा है, एक नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की आधारशिला रखी जा रही है– उसी नये विश्व के बीच हम हिन्दी लेखक हैं जो किसी को गाली देने के लिए आज भी 'जनसंघी' या 'भाजपाई' शब्दों का प्रयोग करते है। १९८२ में प्रकाशित अपनी पुस्तक में मैंने जब इसी तरह की बातें उठाई और लेखक तथा साहित्य की स्वायत्तता की बात की तो 'पहल' के १४ पृष्ठों में समीक्षक वीरेन्द्र मोहन ने 'अन्तरिक्ष का चिन्तन: बटरोही की आलोचना' शीर्षक से मुझे एक सिरे से सिर्फ गरियाया था। इस आवेश को पढ़कर यद्यपि मुझे खुशी हुई थी कि मेरी बात सही जगह पहुंची है लेकिन इस तरह के गाली–गलौज से नये लोगों के संस्कार गलत पड़ने का पूरा खतरा मौजूद रहता है।

गरियाना निश्चय ही साहित्य में खुराक देता है, लेखक को इसका अधिकार भी है, (समाज की भड़ॉस वह साहित्य में ही तो निकालता है) अपनी असहमति भी अवश्य दर्ज की जानी चाहिए, मगर ऐसा न हो कि इस प्रक्रिया में जनवाद के खोल में हम कहीं अधिक खौफनाक तानाशाह के रूप में उभर रहे हों।

हम हिन्दी–लेखकों की दुनिया में स्वायत्तता बनाम विचारधारा का जो स्वरूप उभरा है, वह जीवन–मरण के प्रश्न की तरह साहित्य से बड़ा मुददा बन गया है। बहुधा कहा जाता है कि बिना प्रतिबद्धता के लेखन ही सम्भव नहीं है और प्रतिबद्धता केवल वामपंथी ही होती है। हमारे यहां प्रतिबद्धता मनुष्य के प्रति नहीं, विचारधारा के साथ होती है। विगत तीन–चार दशकों से इस मुददे को लेकर हजारों पृष्ठ रंगे गये हैं।

लेकिन इस परिदृश्य के समानान्तर जब हम अपने समय के सृजनात्मक साहित्य तथा लेखकों की निजी दुनिया के अंदर झांकते हैं तो अमूमन परस्पर विरोधी स्थिति दिखाई देती है। एक अन्य तथ्य यह भी है कि विगत तीन–चार

दशकों के हिन्दी साहित्य की चिन्ताएँ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की चिन्ताओं के समान ही दिखाई देती हैं। लेकिन विडम्बना यह है कि राजनीति के क्षेत्र में तो इस चिन्ता से कुछ चरित्र रचे गये हैं– भीमराव अम्बेडकर, इन्दिरा गाँधी, राम मनोहर लोहिया, मेधा पाटकर, ज्ञानी जैल सिंह, खुशवन्त सिंह, कांशी राम विश्वनाथ प्रताप सिंह आदि लेकिन हिन्दी साहित्य इन तीन चार दशकों में ऐसा कोई यादगार चरित्र नहीं दे पाया। ज्ञानपीठ, साहित्य अकादमी या पत्रिकाओं–पुस्तकों द्वारा जो नाम उभरे हैं– सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा, दिनकर, अज्ञेय, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय, निर्मल वर्मा, शिवप्रसाद सिंह, गिरिजा कुमार माथुर, विष्णु प्रभाकर, गिरिराज किशोर, सर्वेश्वर, धूमिल, मुक्ति–बोध, रामविलास शर्मा आदि .....इन साहित्यकारों का कोई भी एक ऐसा चरित्र सामने नहीं आ सका है जो अपने समय को स्वर दे सका हो और जिसने अपनी अगली पीढ़ी का मार्ग प्रशस्त किया हो। ऐसा चरित्र, जिसने अपने दौर को समझने और आत्मसात करने में हमारी मदद की हो? स्वयं ये लेखक उक्त राजनीतिक चरित्रों से कितने भारी पड़ते हैं– यह एक मामूली आदमी भी देख सकता है। हम लेखकों के लिए लिखने के तर्क खोजने से अधिक चिन्ता का विषय यह मुद्दा है।

यहीं पर आजादी के बाद के हिन्दी साहित्य का सिंहावलोकन करने पर हम लोगों के अस्तित्व से जुड़ा एक वास्तविक मुद्दा उठ खड़ा होता है कि हम हिन्दी लेखकों का अपना रचना–संसार कैसा था और क्या विगत चार–पाँच दशकों के हिन्दी लेखकों के पास अपना कोई जातीय रचना–संसार था भी? यह बड़ा बीहड़ सवाल है, शायद अपमानजनक भी, लेकिन जैसे शादी होने की एक अवधि के बाद भी (परिवार नियोजन विभाग से क्षमा माँगते हुए) बच्चा न होने पर पत्नी या पति के सेक्स–परीक्षण का मुद्दा उठता ही है, उसी प्रकार हिन्दी में रचनाएँ तो लगातार लिखी जा रही हैं, जब कि उनमें से कोई चरित्र पैदा नहीं हो पा रहे हैं। जो चरित्र बन भी रहे हैं, उनकी अनुहारि अपने माता–पिता से नहीं मिल रही– जिसके दो ही अर्थ हो सकते हैं। या तो इन रचनाओं के माता–पिता कोई और हैं या पिताओं के वीर्य में इतनी शक्ति नहीं है कि वे अपनी संतानों को अपना चेहरा दे सकें।

यह कोई छोटी बात नहीं है कि विगत चालीस वर्षों में जिस सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य को वामपंथी सरोकारों और चिन्तन पद्धतियों के द्वारा देखा–परखा गया है, उसके एक भी रचनाकार या किसी एक रचना का दखल वामपंथी (या किसी भी विचारधारा की) मुख्यधारा में नहीं हो सका है। इस बीच देश के सभी विश्वविद्यालयों में मार्क्सवादी–सौन्दर्यशास्त्र को एक पृथक विषय के रूप में मान्यता मिली है। दर्जनों पत्रिकाओं के इस विषय पर विशेषांक प्रकाशित हुए हैं, नेहरू को स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य का विभाजक बिन्दु माना गया है, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने साहित्य के समाजवादी–मार्क्सवादी अध्ययन के लिए करोड़ों रुपया आबंटित किया है और साहित्य और संस्कृति से जुड़ी शासकीय अकादमियाँ पूरी तरह वामपंथ के रंग में रंगी हैं।

यही नहीं, आधुनिक भारत के निर्माता समझे जाने वाले प्रथम प्रधानमंत्री से लेकर उनके अंतिम वंशज तक समाजवाद भारतीय मनीषा में निर्णायक भूमिका निभाता रहा है, कितने ही लेखकों को सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार प्रदान किये गये, वाम और दक्षिण राष्ट्रों में साहित्यकारों के अनेक शिष्टमण्डल भी गये।.....अब जरा इस तथ्य पर गौर करें कि भारतीय साहित्यकारों के इन शिष्टमण्डलों में हिन्दी का प्रतिनिधित्व करने वाले लेखक किस विचारधारा के थे। सहज ही यह तथ्य पता चलेगा कि हिन्दी लेखक को शासकीय स्तर पर तब तक मान्यता नहीं मिलती थी, जब तक कि वह साम्यवादी, समाजवादी सोच का न हो।

ऐसी हालत में यह कहना कि हिन्दी लेखक को उसकी घुट्टी में ही समाजवाद पिलाया जाता था, अतिशयोक्ति नहीं समझी जानी चाहिए। एशिया के उत्तरी और मध्यपूर्वी राष्ट्रों में तो घोषित साम्यवाद था, लेकिन हमारे यहाँ वह प्रजातंत्र के नाम पर उसके पर्यायवाची के रूप में आया था। आश्चर्य है कि तब भी साम्यवाद और समाजवाद की मुख्यधारा में हिन्दी लेखन का एक कतरा भी मानक रूप में नहीं पहुंच पाया। साम्यवाद बनाम समाजवाद तथा साम्यवाद के जितने तरह के वर्गीकरण इस देश के हिन्दी क्षेत्र में किये गये और इस विचारधारा के भेदों–उपभेदों को लेकर जितनी सिर–फुटौवल हिन्दी में हुई, शायद ही उतनी घोपित साम्यवादी देशों में हुई हो। स्वच्छक शोषित पात्र द्वारा शोषक जमींदार पात्र पर पाखाने का तसला उलटकर क्रान्ति सिर्फ हिन्दी लेखन में ही हुई है और मुक्तिबोध–सर्वेश्वर या रघुवीर सहाय– हशमत की कविताओं के पोस्टर चिपका–चिपका कर हलवाहों–दलितों–मजदूरों के द्वारा शोषक–वर्ग के सर्वनाश से जुड़ी क्रान्ति भी सिर्फ हिन्दी साहित्य में हुई है। अफसोस कि हिन्दी साहित्य की इस महान क्रान्ति का एक छोटा–सा संवाद भी न ही आज बचे–खुचे समाजवादी देशों में सुनाई देता और न इस नई दुनिया में, जो सिमटकर आज एक मुहल्ले की तरह बन गई है।

इसका क्या कारण हो सकता है?

दरअसल, स्वायत्तता की अवधारणा तब तक जन्म नहीं ले सकती, जब तक कि इस शब्द के प्रयोगकर्ता के पास अपनी कोई निजी दुनिया न हो। (यहाँ पर 'निजी' शब्द पर व्यर्थ बहस करने की जरूरत नहीं है क्योंकि लेखक भाव और संवेदना दोनों ही स्तरों पर 'इकाई' नहीं होता, वह 'सामाजिक' ही नहीं, 'सार्वभौमिक' होता है।)

महत्वपूर्ण यह है कि लेखक की यह 'निजी' दृष्टि क्या विद्यमान विचार धाराओं या दृष्टियों की किसी रूप में विरोधी है? या कि लेखक की दृष्टि मौजूद नियोजकों की दृष्टि के सामने किसी रूप में चुनौती खड़ी कर सकी है? विरोध से ही संघर्ष जन्म लेता है और तभी विकल्प या चुनाव की स्थिति आती है। आजादी के बाद के राजनीतिक मॉडल में, जिसे आज के दिन बिना किसी संशय के नेहरूवादी मॉडल कहा जा सकता है, तथा हिन्दी के साहित्यिक मॉडल में

प्रतिनिधि कविताओं अथवा निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, भीष्म साहनी और कृष्णा सोबती की कहानियों की वैचारिक दुनिया को नेहरू, इंदिरा गाँधी, राममनोहर लोहिया, लालबहादुर शास्त्री, वसंत साठे, अर्जुन सिंह, राजीव गाँधी, विश्वनाथ प्रताप सिंह, चन्द्रशेखर, नारायण दत्त तिवारी, कृष्णचन्द्र पंत, अटलबिहारी वाजपेयी या नरसिम्हा राव ने राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर अपने विचारों के रूप में जन–जन तक इस प्रकार पहुँचाया है कि ऐसा लगता है, मानो हिन्दी के उक्त 'महान' लेखक हमारे इन राजनेताओं के टीकाकार हों। हमारे ये लेखक अपने साहित्य के जरिये अपनी कोई अलग दुनिया नहीं रचते, वरन् एक यथार्थवादी आलोचक की भाँति सिर्फ नेहरूवादी दुनिया का पुर्नप्रस्तुतीकरण करते हैं। तब फिर स्वायत्तता की बात उठती ही कहाँ है? और अगर हम वही लिख रहे हैं जिसे सत्ता के पक्षधारी नियोजक चाहते हैं तो दो ही विकल्प बचते हैं– या तो उन राजनेताओं को भी लेखक मान लिया जाय या इन लेखकों को राजनेता की मान्यता दे दी जाय। टीका या भाष्य को मूल रचना की श्रेणी में तो नहीं रखा जा सकता। अंततः विकल्प रूप में एक का चुनाव तो करना ही पड़ेगा।

\+ + +

चेक गणराज्य के वर्तमान राष्ट्रपति वात्सलाव हावेल कहते हैं, "मैं एक ऐसे देश में रहता हूँ जहाँ लेखक–कांग्रेस अथवा वहाँ दिये गये किसी भाषण से सम्पूर्ण व्यवस्था हिल जाती है,..........जिसमें शब्द सरकार की समूची इमारत को हिलाकर रख देते हैं, जहाँ शब्दों की शक्ति दस सैनिक डिविजनों से अधिक है, जहाँ सोल्जेनित्सिन के सत्य वचन इतने खतरनाक समझे गये कि उनके लेखक को विमान में लादकर सुदूर निर्वासित कर दिया गया। धरती के उस भूभाग में, जहाँ मैं रहता हूँ, शब्द की एकात्मता समूचे पावर ब्लॉक (पुराने कम्युनिस्ट क्षेत्र) को हिलाकर रख सकती है।"

ध्यान से देखेंगे तो हावेल के इस कथन में 'स्वायत्तता' की अवधारणा जन्म लेती हुई स्पष्ट दिखाई देती है क्योंकि वह शब्द को व्यवस्था और सत्ता से बड़ी किन्तु एक समानान्तर शक्ति मानता है। शब्द व्यवस्था का ध्वंस भी करते हैं और एक आदर्श समानान्तर व्यवस्था को जन्म भी देते हैं– यही 'शब्द–ब्रह्म' है, जिसे शिव के विराट मिथक के रूप में (शिवलिंग और अर्धयोनि के रूप में) हमारे यहाँ प्रस्तुत किया गया है, जो एक साथ रचनाकार भी है और विध्वंसक भी। इसी 'शब्द–ब्रह्म' से हावेल ने अपने लेख 'शब्द के बारे में दो–शब्द' की शुरूआत की है– 'शुरू में केवल शब्द था......'

शब्द की इसी विशिष्ट शक्ति की जड़ों तक पहुंचकर ही जैसे हावेल कहते हैं, "एक समय ऐसा था, जब दलितों और पीड़ितों की समूची पीढ़ी के लिए 'समाजवाद' शब्द न्यायपूर्ण विश्व का सम्मोहक पर्यायवाची शब्द था। उस समय वह शब्द जो आदर्श प्रकट करता था, उसके लिए लोग अपने बहुमूल्य जीवन के अनेकों वर्ष और सम्पूर्ण जीवन समर्पित करने को तैयार थे। लेकिन मेरे देश में उस विशेष

(जिसमें प्रतिनिधि रूप से मुक्तिबोध, दिनकर, अज्ञेय, रघुवीर सहाय, नागार्जुन, नरेश मेहता, शमशेर, भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा, अशोक वाजपेयी, पाश, हशमत, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, रामविलास शर्मा और रेणु की दृष्टियाँ शामिल हैं) कोई फ़र्क नहीं दिखाई देता। वास्तविकता तो यह है कि (बहुधा ऐसा लगता है) जिसे हमारे लेखक पूरी स्पष्टता से नहीं कह पाते, उसे नेहरूवादी नेता अधिक स्पष्ट एवं प्रभावशाली ढंग से कह देते हैं।

शमशेर, मुक्तिबोध, अज्ञेय, नागार्जुन और रघुवीर सहाय की तमाम शब्द– 'समाजवाद'– का अर्थ वर्षों पहले एक साधारण लाठी हो गया था, जिसका इस्तेमाल नकचढ़े, धनी नौकरशाह उदार विचारों वाले नागरिकों की पिटाई के लिए सुबह से शाम तक करते थे। यह एक तथ्य है मेरे देश में, वर्षों से यह शब्द जादू–टोने के अलावा और कुछ नहीं है। और कोई सन्देहों के घेरे में नहीं आना चाहता, तो वह इसे टालता है।"

"कुछ शब्दों का कैसा रहस्यमय भाग्य होता है", हावेल आगे कहते हैं, "इतिहास के एक काल में कुछ साहसी उदारमना लोगों को इसलिए जेल भेजा जाता है क्योंकि एक शब्द–विशेष का अर्थ उनके लिए सभी कुछ है, और दूसरे काल में उन्हीं व्यक्तियों को इसलिए जेल भेजा जाता है क्योंकि वही शब्द अब तक बेहतर विश्व के प्रतीक के स्थान पर एक तानाशाह का प्रतीक बन गया है।"

इन पंक्तियों को पढ़कर क्या ऐसा नहीं लगता कि हावेल अपने देश चेक गणराज्य या पूर्व चेकेस्लोवाकिया के बारे में नहीं कह रहे हैं बल्कि १५ अगस्त १९४७ को हमें प्राप्त उस भारतीय आजादी के बारे में कह रहे हैं जो कितने ही शहीदों के बलिदान से हमें मिली थी मगर जिसकी उपलब्धि के रूप में हमें प्राप्त हुआ नेहरू–परिवार का कुनबावाद और प्रजातंत्र के खोल में विस्फारित होता राजतंत्र, जिसमें हम दो–दिन पहले आई एक इटालियन महिला सोनिया गाँधी को अपने राष्ट्राध्यक्ष के रूप में इसलिए विश्वसनीय मान लेते हैं क्योंकि नेहरू खानदान ने उसे अपनी बहू मान लिया था जब कि इसी धरती–मिट्टी के कीचड़–सने लोगों की बात करने वालों को हम लोग जातिवादी–सम्प्रदायवादी कह देते हैं। शहीदों के बलिदान से हमें उपलब्धि रूप में मिली अंग्रेजों की साम्राज्यवादी और मुगलों की सामंती भाषा, इन भाषाओं का एक निरंकुश तानाशाही राज्य, नई आरक्षणवादी वर्णव्यवस्था तथा दारोगावादी अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति के नाम पर अपनी जड़ों से कटकर त्रिशंकु बने रहने की नियति। रचनाकार की इस स्वायत्त दृष्टि को एक विचित्र नाम देते हैं हावेल– 'सहज मूर्खता'! (हिन्दी लेखक की तरह कृपया इसका अनुवाद न पूछें क्योंकि यह शब्द चेक भाषा से सीधे अनूदित है। हिन्दी लेखक की विडम्बना यह है कि वह हिन्दी के शिलष्ट शब्दों को नहीं समझता लेकिन अंग्रेजी शब्दों के माध्यम से हिन्दी समझ लेता है। साहित्य को वह (अपनी पुस्तकें छोड़कर) अंग्रेजी के माध्यम से पढ़ता है और कभी–कभार अगर हिन्दी अनुवाद पढ़ भी लेता है तो उसके अनुवाद की सफलता मूल रचना के अंग्रेजी अनुवाद को पढ़कर तय करता है।)

मिलकर खुद ही 'पाश' या 'हशमत' की हत्या करवाते हैं और फिर उनके अनाम हत्यारों के विरूद्ध संसद भवन में अधिनियम पास करके और सड़कों पर नुक्कड नाटक खेलकर शासन चलाते हैं।)

हावेल समझते हैं कि स्वायत्त दृष्टि से सम्पन्न लेखक सिर्फ लिखता है, चीखता–चिल्लाता है, प्रार्थना करता है, कानून की गुहार लगाता है और इस पूरे समय में उसे यह बात अच्छी तरह मालूम होती है कि देर–सवेर वे उसे इस विरोध के लिए जेल में बंद कर देंगे। (हमारे देश में भी ऐसे लोगों को जेल में कैद किया जाता है, यद्यपि यहाँ विरोध की जाने वाली वस्तु कोई व्यवस्था नहीं, विरोधी दल होते हैं। जब भी वे सत्ता में आते हैं, बारी–बारी से एक दूसरे को जेल भेजते रहते हैं।) भारत में एक उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि यहाँ का सर्वाधिक चर्चित एवं व्यवस्था–विरोधी–क्रान्तिकारी लेखक यहाँ का नौकरशाह है। इसे सभी जानते हैं कि भारतीय मंत्री अनपढ़, अनुभवहीन और अपने जाति–परिवार की छोटी–सी दुनिया तक सीमित रहने वाला व्यक्ति होता है, जो दिमाग की अपेक्षा बन्दूक के सहारे जिन्दा रहता है– उसे, देश चलाने के लिए दिशा तो नौकरशाह ही देता है। तब भला नौकरशाह को लेखक के रूप में अपनी नीतियों का विरोध करने की आवश्यकता क्यों पड़ती है? हिन्दी में विगत दो–तीन दशकों में नौकरशाहों की बीबियों को भी लेखिका के रूप में मान्यता मिलने लगी है, अतः जहाँ पूरा परिवार व्यवस्था का अंग हो या व्यवस्था लेखकों के परिवार से बनी हो– वहाँ जन–विरोधी नियोजन की गुंजाइश तो नहीं होनी चाहिए!

स्वायत्त, दृष्टि सम्पन्न–सत्ता–विरोधी इस 'सहज–मूर्ख' के बारे में हावेल कहते हैं, "मैं मानता हूँ कि संसार में राजनीति की अवधारणा और अर्थ हैं, सत्ता विरोध उससे बिल्कुल विपरीत अवधारणाओं में से जन्म लेता है। इसका अर्थ यह है कि सत्ता विरोध वास्तविक सत्ता की शक्ति से हीन स्थिति में कार्य करता है। वह सत्ता की माँग करता भी नहीं। उसे कुर्सी की चाह नहीं होती इसलिए वह मतदाताओं को भी नहीं रिझाता। वह जनता को भी प्रसन्न करने की कोशिश नहीं करता। वह न कुछ देता है, न देने का वादा करता है। अगर वह कुछ देने की स्थिति में होता है तो वह उसकी अपनी खाल है। और वह उसे दाँव पर लगाता भी है क्योंकि इसके अलावा और कुछ नहीं होता उसके पास, जिसके आध ार पर वह अपनी विचार निष्ठा का सत्य प्रमाणित कर सकें।......?

लेखक की इस विचारनिष्ठा को और अधिक स्पष्ट करते हुए हावेल आगे लिखते हैं, "उसकी 'राजनीतिक' आस्था की नींव नैतिक और अस्तित्वपरक होती है। वह जो कुछ भी करता है, आरम्भ में अपने लिए करता है। उसके अन्दर कुछ होता है, जो स्थितियों के प्रति विद्रोही हो उठता है और वह 'झूठ का जीवन' जीने में स्वयं को असमर्थ पाता है। इसके बाद ही एक राजनीतिक उद्देश्य उभरता है– एक आशा, स्पष्ट, अनिश्चित, जिसका औचित्य सिद्ध करना कठिन होता है– जे उसे यह बताती है कि उसने जो रास्ता चुना है, वह प्रायः सबके लिए कल्याणकारी सिद्ध हो सकता है। वह आशा करता है कि राजनीति से परे की राजनीति 'शक्ति

विद्यमान व्यवस्था के सामने स्वायत्त दृष्टि वाला यह सत्ता-विरोधी 'सहज मूर्ख'–लेखक, हावेल के अनुसार 'डॉन क्वोटे की तरह शेखचिल्ली होता है।' हावेल यह भी मानते हैं कि सत्ता विरोध के परिप्रेक्ष्य के मूल में एक वीर–स्वप्नजीवी, पागल और यथार्थवादी छिपा होता है। वह अपने आलोचनात्मक आकलन लिखता है और अकेला ही तरह–तरह के अधिकार और स्वतंत्रताएँ माँगता है। उसके हाथ में होती है सिर्फ लेखनी और वह अकेला ही राज्य की दैत्याकार सत्ता और उसकी पुलिस के सामने खड़ा होता है। (हमारे देश में तो बुद्धिजीवी और व्यवस्था दोनों और सत्ता की परिधि से बाहर की राजनीति' का सचमुच कुछ अर्थ है। चाहे कितने ही कठिन और कठोर रास्ते से उस पर आगे बढ़ा जाये, यह सचमुच सबको एक निश्चित मुकाम की ओर ले जाती है, मन में कुछ नया प्रेरित करती , कुछ प्रभाव छोड़ती है। वह कुछ जोर से बोले गये सत्य की क्षणिकता की तरह, मानवता के लिए खुलेआम प्रस्तुत की गई चिन्ता की तरह ही सही, अपने अन्दर एक शक्ति छिपाये रहती है.....

"और उसका एक–एक शब्द प्रकाशित कर सकता है, समाज की 'छिपी चेतना' पर एक निशान छोड़ सकता है.... जिसका एक अंतर्निहित तत्व यह है कि सत्ता विरोध की नीति भविष्य की बात नहीं करती, वर्तमान का आकलन करती है। वह उस सबकी आलोचना करता है जो वर्तमान में गलत है, अनैतिक है ओर वह सुनहरे कल की बात नहीं करता। वह अपने अभियान की पूर्णता इसमें देखता है कि व्यवस्था के दबाव से मनुष्य को कैसे बचाया जाय, न कि बेहतर व्यवस्था की अभिकल्पना। (कितना आसान है हमारे देश में समस्याओं का समाधान! शूद्रों को शूद्र बनाये रखते हूए उन्हे खुश करना है तो अम्बेडकर के जन्मदिन को राष्ट्रीय अवकाश घोषित कर दिया जाये, सिखों के आतंकवाद को गति देने के लिए किसी भिंडरावाला को पैरा किया जाये और मुसलमानों को खुश करने के लिए एक अयोध्या रचा जाये।

"जहां तक भविष्य की बात है" हावेल अपनी रणनीति स्पष्ट करते हैं, "वह उन नैतिक और राजनीतिक मूल्यों की बात करता है, जिन पर व्यवस्था को आधारित होना चाहिए। (न वह इतिहास की अपने पूर्वाग्रहों के आधार पर व्याख्या करता है, न प्राचीन मिथकों को – जो लोकजीवन में रस–बस गये हैं – विकृत करने अथवा अपने अनुसार पुनप्रस्तुत करने की कोशिश करता है! बटरोही) वह इस बात में नहीं उलझना चाहता है कौन, कैसे और कब इन मूल्यों को मानवता के लिए सुनिश्चित करेगा। उसे अच्छी तरह पता है कि भविष्य का स्वरूप उसकी वर्तमान आकांक्षाओं पर नहीं, बल्कि आने वाली उन घटनाओं पर आधारित होगा, जिनकी भविष्यवाणी कठिन है। इस तरह, यह, सत्ता विरोधी संसार की 'सहज' मूर्खता है।

"वह अपनी सीमाओं में अर्थपूर्ण है क्योंकि इसमें एक निरन्तरता है – इसकी अपनी एक विशिष्ट नीति है क्योंकि वह किन्हीं भी कारणों से पथ से विचलित नहीं होती। यही वास्तव में राजनीति है, क्योंकि यह कोई राजनीति नहीं

दायरे से बाहर खड़ा पाता है – यानी उपयोगिता, नीति, सफलता, समझौता और अर्धसत्यों और धोखाधडी के अनिवार्य घलमेल से दूर और तब वह अपना भी उपहास कर सकता है। उसे दूसरों की नजरो में हास्यापद बनने का खतरा नहीं होगा।"

और अंत में हावेल लेखक की इस स्वायत्त दुनिया से जुडी दृष्टि 'सहज मूर्खता' का उपसंहार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं, "एक सत्ता विरोधी तभी हास्यारस्पद होता है, जब वह अपने नैसर्गिक अस्तित्व की सीमाएं लांघ जाता है और वास्तविक सत्ता की अभिकल्पना के क्षेत्र में प्रवेश करता है – जो है वास्तव में शुद्ध कल्पना और अनुमान की दुनिया।"

समय, शब्द और स्वायत्ता पर समकालीन भारतीय साहित्यकारों ने भी लिखा, मनन किया है। समकालीन भारतीय कविता के सर्वाधिक चर्चित ओड़िया कवि–चिन्तक सीताकांत महापात्र ने अपने निबन्ध 'कविता की पहचान' में इस संदर्भ में विस्तार से विचार किया है।

"कविता शब्दों का ऑर्के..ट्रा है, भाषा का जादू है, और शब्द सामाजिक विरासत लिए हुए होते हैं और उनकी जड़ें व्यक्ति के मन के सपनों और समृति में गहरे जमी होती हैं।"

"प्रारम्भ में शब्द था लेकिन एक बार जब वह उपस्थित हो गया तो मनुष्य के यहां रहने और उसके अस्तित्व की दुनिया का अत ..हीं हो सकता था।"

"शब्द भंगिता या सकेत भर नहीं है। वह स्वय मनुष्य का आत्मा है जो यथार्थ को उसके तमाम रंगों और जटिलताओं के साथ आवृत्त कर देता है।....."

"लेखक और लिखे शब्द की स्वायत्ता अपने आप में सभ्यता के सवाल के पृथक नहीं है। सौभाग्यवश, जैसा कि लेखक मानते ही हैं, पोषण के समर्थ शब्द में सभी प्रकार की अत्याचारिता को (चाहे वह राज्य की हो, बहुमत की अथवा इलैक्ट्रानिक माध्यमों की हो) और दिपकर पीछा करने वाले सभी दबावों के नकार की विखण्डनकारी शक्ति भी है। ओक्ताबियों पॉज जिसे 'सीक्रेट फिएस्टा' (गुप्त उत्सव कहते हैं और जो हमारे युग में कला की लाक्षणिक विशेषता है, शब्द उसी का एक अंश है।"

"लेखन कला मूलतः एक अक्षम अ..ढ प्रयास है, शब्दहीनता के लिए समुचित प्रतीकों को ढूँढने का – उस अंतिम एकांकीपन में, जो शायद हमारी नियति है, लखक किसी भी अन्य कलाकार की तरह अमूर्त को मूर्त और अस्पष्ट और स्पष्ट करने का प्रयास करता है।"

इसी क्रम में हिन्दी के कुछ महत्वपूर्ण नये–पुराने साहित्यकारों–चिन्तकों के इस संदर्भ में व्यक्त किये गये विचारों को जानना भी महत्वपूर्ण होगा।

"साहित्य और कलाएं मनुष्य की स्थायी गोधूलि है जहां कुछ भी साफ–साफ

खेलती। यह ठोस और प्रभावशाली है – अपनी मूर्खता के बावजूद नहीं, बल्कि इसी के कारण। क्योंकि इस मूर्खता में एक तरह की ईमानदारी है औश्र वह अपने प्रति निष्ठावान। है। वह सम्पूर्ण और अविघटित है। यह स्वप्न और आदर्श का संसार हो सकता है, लेकिन फिर भी यह कल्पना राज्य नहीं है।...

'आखिर इसे नकारा क्यों जाये? यह सत्य संसार, चाहे इसमें रहना कितना ही कठिन क्यों न हो, इसे एक सुनिश्चित लाभदायक स्थिति प्रदान करता है। वह अपने को वास्तविक सत्ता के ब्रहमाण्ड से और पारम्परिक, व्यावहारिक राज्य के नहीं दीख पड़ता, पर जिसमें रहकर मनुष्य की, उसके संसार और लोक की परम वेध्यता चरितार्थ होती है। जो लोग उसे सर्वथा स्पष्ट बना देना चाहते हैं, वह उसे साहित्य अ कला न रहने देकर दर्शन, विचार, धर्म राजनीति आदि का सकरण बना ना चाहते ।''

(अशोक बाजपेयी : दूसरा समय)

''अशोक बाजपेयी को समझना मुश्किल है क्योंकि वे जानबूझकर नहीं समझते कि भाषाएं नहीं जुड़तीं – उनके चिन्तन और विचार जुड़ते हैं। उनमें अन्तर्निहित मानवीय भाव जुड़ते हैं।, उसमें जुड़ी जनता की समान अभिव्यक्तियां जुड़तीं हैं। जनता की प्रतिबद्धता, आस्था, आकांक्षा, संघर्ष और स्वप्न जुड़ते हैं। फिर जातीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एकता स्थापित होती है। बिना जातीय और राष्ट्रीय हुए जो अंतर्राष्ट्रीय होते हैं, वे वस्तुतः कहीं के नहीं होते।''

(कार्मेन्दु शिशिर : 'पहल' - ३८)

''असल में हमें इस पर विचार करना चाहिए : जो लोग लेखक या कलाकार से दोटूकपन की माग करते हैं, अगर वे सैन्य तानाशाह नहीं है, जो कि हमार ढीले–ढीले सही, प्रजातंत्र की हमें बहुत बड़ी सौगात है कि ऐसे तानाशाह नही हैं, तो वे उसे फैसला देने पर मजबूर करना चाहते हैं। यों तो सारा साहित्य और कलाएं मनुष्य के विरोध में – चाहे हमारे समय और चाहे समूचे इतिहास में – जो कुछ भी होता आया है, उसके विरूद्ध निरन्तर बिला चूक और बिला हिचक दिया जाने वाला फैसला ही है। पर एक दूसरे अर्थ में साहित्य और कलाएं दूसरे पर फैसला देने को अनैतिक मानते हैं। वे एक व्यक्ति के दूसरे पर फैसला देने के अधिकार को ही एक तरह से चुनौती देते हैं।''

''यह तर्क दिया जा सकता है और शायद यही तर्क दिया भी जायेगा कि मडोन्ना (अमरीकी पॉप गायिका) या पूजा बेदी का सम्बन्ध साहित्य से तो है नहीं, फिर हिन्दी का आलोचक उन पर क्यों मगज मारे या उन्हें साहित्य के विमर्श का विषय कैसे माना जाए? लेकिन यहां एक प्रतिप्रश्न भी किया जा सकता है कि आलोचना सिर्फ साहित्यिक रचनाओं को ही क्यों सम्बोधित करें?''

(रवीन्द्र त्रिपाठी : समकालीन भारतीय साहित्य : ५३)

''यह नहीं कि समकालीन समाज और समय का साहित्य और कलाओं पर

सीताकांत महापात्र से लेकर अशोक वाजपेयी तक फैले समय, शब्द और स्वायत्ता से जुड़े ये विचार हमें गहरे सोचने के लिए विवश करते हैं लेकिन एक-दूसरे से कटे, परस्पर विरोधी, अलग-अलग स्तरों पर। कहीं ये अपनी काव्यात्मक भाषा के साथ, जीवन के संघर्षमय वर्तमान से कटे हुए में परम्परा और स्मृति के झूठे स्वप्निल संसार में ले जाते हैं तो कहीं एक सत्ताधीश की त्वरा में हमें मृगमरीचिका के बीच निर्देश देने लगते हैं।

समय, शब्द और स्वायत्ता – इन तीनों के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ घटक है – मनुष्य, और इसमें संदेह नहीं कि साहित्य और कलाओं में व्यक्त की गई चिन्ताएं मनुष्य के कारण ही होती हैं। मनुष्य के लिए नहीं, मनुष्य के कारण–इसीलिए साहित्य और कलाएं सभी पुरानी नहीं पड़तीं, मनुष्य की तरह वे मरती नहीं। मनुष्य के लिए प्रकृति एवं ब्रहमाण्ड में जो कुछ देय है, उससे हम बच सकते हैं, उसके बिना भी हमारा काल चल सकता है, लेकिन जो कुछ मनुष्य के कारण है, उसके बिना तो हमारा एक पल भी सम्भव नहीं है।

इसीलिए इन उद्धरणों की आंतरिक दुनिया में घुसने पर बहुत साफ लगता है कि इनके लेखकों ने उन तमाम शब्दों को मनुष्य के एक खास संदर्भ के लिए इस्तेमाल करते हुए चिन्तन किया है। यह साफ दिखाई देता है कि मनुष्य की अवधारणा इन लेखकों के लिए सिकुड़ती, सिमटती खुद अपने-आप में केन्द्रित हो गई है, अंततः मनुष्य और रचनाकार की अवधारणा एक अदद व्यक्ति के रूप में सिमट कर रह गई है – ऐसा व्यक्ति, जो एक खास समय में, एक विशेष संदर्भ के साथ स्वयं को तथा अपने चारों और फैले परिवेश को देख रहा है। उसके लिए परिवेश की समग्रता उतनी ही है जितनी की वह अपनी निजी आंखों से, एक खास समय में देख रहा है। यह मनुष्य इन उदधरणों में साफ पहचाना जा सकता है, जो और कोई नहीं, खुद उन पंक्तियों का लेखक ही है।

इसी बात को अपने देश काल की भाषा से जुड़ी स्वायत्ता के संदर्भ में प्रस्तुत करते हुए मृणाल पाण्डे अपने इस कथन में शिद्दत की पीडा अनुभव करती हुई कहती हैं। (हालांकि यह कथन भी किसी प्रकार का सुझाव या समाधान नहीं है, फिर भी एक ईमानदार दिशा संकेत-सा तो लगता ही है, जिसमें किसी किस्म की राजनीतिक चतुराई नहीं है।) :

"आज जब कि हर ईमानदार व्यक्ति के लिए राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर पूंजीवाद के विद्रूप की विभीषिका उतनी ही स्पष्ट है जितनी कि साम्यवाद की, यह जरूरी हो जाता है कि साहित्यकार वाद–विशेष से शुरू कर रचनात्मकता तक जाने के बजाय, साहित्य के मानवीय माध्यम से अपने समय और समाज की कार्यधर्मी नैतिकता को नये सिरे से परिभाषित करें और इसके लिए एक नई भाषा उन्हें खोजनी ही होगी। यह निर्विवाद है, वरना साहित्य और समाज, सामंती साम्यवाद के जंगल से पूंजीवादी समाजवाद के जंगल तक भटकते रहेंगे।"

(मृणाल पाण्डे : समकालीन साहित्य में नैतिकता का सवाल)

प्रभाव नहीं पड़ता है या कि नहीं पड़ना चाहिए। दोनों ही अपनी जगह ठीक हैं, पर हमारे पारम्परिक साहित्य या सौन्दर्यशास्त्र में, और स्वयं साहित्यिक और कलात्मक सृजन की हजारों वर्ष पुरानी परम्परा में इन्हें वैसा महत्व कभी नहीं दिया गया जैसा कि इधर पश्चिम – प्रेरित आधुनिकता के विास में हम देने लगे हैं। कालिदास, भवभूति या सूरदास आदि हम इसलिए नहीं पढ़ते या सराहते कि उनमें अपने समय और समाज का मार्मिक चित्रण है।''

(अशोक वाजपेयी, वही)

दरअसल साहित्यकार की स्वायत्ता यहीं पर खण्डित होती है, जब खुद साहित्यकार एक राजनीतिज्ञ की तरह दूसरों के लिए 'चाहिए' की शब्दावली का इस्तेमाल करने लगता है। साहित्यकार जब भी अपनी रचना की मदद या बचाव के लिए दूसरों की ओर ताकने लगता है, चाहे वह दूसरा कोई लेखक हो या राजनीतिज्ञ अथवा संस्कृतिकर्मी – तभी समझ लेना चाहिए कि साहित्यकार की स्वायत्ता खंडित हो चुकी है। साहित्यकार कोई एक व्यक्ति नहीं होता, जैसे व्यास कोई एक व्यक्ति नहीं था। व्यक्ति की अलग पहचान उसके 'अहम' से बनती है इसीलिए स्वायत्ता में अहम के लिए किसी भी रूप में, किसी संदर्भ में, कहीं भी, जरा–भी जगह नहीं होती। मनुष्य, समाज, देश, काल और समय ...... इस क्रम में सबसे बाद में फिर से लौटकर आता है मनुष्य । इसी लौटकर आये नये मनुष्य को अपने समस्त सोपानों के साथ रेखांकित करता है साहित्य – जो बिना स्वायत्ता के सम्भव ही नहीं है।

कहानी

जिन्दी लाशें और मातम

नवीन निरूपेन्द्र भट्ट

सितम्बर का माह। चाँदनी रात का शीतल सन्नाटा सम्पूर्ण वातावरण को नम कर रहा था। गर्मी दम तोड़ रही थी, किन्तु–मानव देह की तपन में कुछ कमी न थी। कोठी से कुछ दूर 'राड' का बना सफेद क्रास आज भी कल की तरह शान्त भाव से जल रहा है। सुना है यह क्रास पहले भी था, किन्तु खर्च बचाने की दृष्टि से यह जलाया नहीं जाता था।

चारों ओर शान्ति है, नमी है। तप रहा है तो बस मिसेज पाल का मन। न जाने कौन सा ऐसा विचार है जो मिसेज पाल को अन्दर ही अन्दर कीड़े की तरह कुरेद रहा है। यह वही विषैला कीड़ा है जिसके विषदंश से रात में प्रायः वह चीख उठती है, कराह उठती है। अपने इस दर्द को, तड़प को वह किसी से कह भी तो नहीं सकती, कौन विश्वास करेगा उसकी बात का। क्या जल में तैरती, नाचती मछली को किसी ने प्यासी देखा है?

आज उस का मन बहुत ही अशान्त हो उठा है। दिल बैठ बैठ सा जाता है। उसे लग रहा है शायद इस भयंकर पीड़ा के बाद उसके मन का फोड़ा फट जायेगा। उसके खून और पीप में प्रतिबिम्वित होगी एक तस्वीर जो उसे बेहद प्यारी है जिसके मोह ने उसे एक दम पागल बना दिया है।

छात्रावास की खिडकियों पर अनेकों आकृतियाँ बन रही हैं–बिगड़ रही है। १५ वर्ष पूर्व के धूमिल चित्र उभर आते हैं जैसे आज ही इसी घड़ी सब कुछ रंगों में डुबोया जा रहा हो। देहरादून का मिशन स्कूल–सुषमा, रीता, एलिजाबेथ और न जाने किस किस की स्मृतियाँ वर्ष दर वर्ष एक मोटी, नम तह जमती जा रही थी। देखते ही देखते वे सब डिग्री कालेज में दाखिल हो गई थी। कितना विचित्र, कितना मधुर था कालिज का प्रथम वर्ष। यही वह वर्ष था जब वह पॉल से मिली थी और फिर कैसे धीरे धीरे वे दोनों एक दूसरे से मिलने लगे थे।

प्रायः वह 'डेस्क' पर उसका नाम अंकित कर देता। भरी कक्षा में उसे एक टक निहारा करता। तब वह कैसी पुलकित हो उठती थी। कितना आनन्द आता था। अंग–प्रत्यंग किसी चकनाचूर कर देने वाली मस्ती से टूट जाता था। ऐसे क्षणों में अक्सर वह अपनी सुध–बुध खो बैठती थी। सम्पूर्ण संसार पाल और उस तक कैसे सिमट कर आ गया था तब! सब कुछ उसके हाथ में आ गया था–सब। कुछ शेष रह भी नहीं गया था तब कुछ और आज आत्मा रो उठती है। उसी पाल को कितने रूपों में बँटा पाया है उसने।

कल मिशनरी सन्डे' था। पाल ने प्रातः दो घन्टे अपने 'आफिस' में व्यतीत किये थे। मोटी मोटी पोथियों पर से धूल झाड़ी थी। उन पर कहीं कहीं चिन्ह

लगाये थे। उसकी क्रियाओं से ऐसा लगता था – वह कुछ ढूँढ रहा है जो उसके पास है नहीं और फिर सांझ गये पाल 'पुलपिट' पर खड़ा 'सरगन' दे रहा था।

–'तो मैं कह रहा था हमारा सम्पूर्ण जीवन परमेश्वर की शिक्षा पर व्यवहारिक रूप से आधारित होना चाहिए। आज यदि हम सच्चे अर्थों में मसीह को धारण कर लें। तो मैं आप से सच कहता हूं – संसार से यह दुख पीड़ा, उदासी और बीमारी सब उड़ जायेंगी। मसीह दीन और दुखियों के लिए इस संसार में मानव रूप में आया था। भाईयों! हमें भी हर पल हर क्षण इन्हीं दीन और दुखियों के लिए जीना है। चाहे मार्ग कितना ही कठिन हो। कितनी ही बाधायें क्यों न आयें हमें निरन्तर अपनी सलीब उठाकर सेवा के महान लक्ष्य की प्राप्ति हेतु आगे बढ़ते जाना है। बस! सेवा ही तो हमारा धर्म है।''

उसके मन पर अजीब उदासी छा गई थी तब । सारा शरीर एक दम ठंडा हो गया था। वह 'चर्च' से उठ आई थी। सबकी दृष्टि उस पर टिक गई थी एक पल को शान्त। किन्तु उन शान्त नेत्रों ने उसे कहीं अन्दर तक बेध दिया था – छेद दिया था वह लहुलुहान हो उठी थी। आज की बात से मिलती जुलती कुछ ही माह पूर्व की घटना स्मरण हो आई उसे। किसी गांव निवासी गरीब ईसाई ने जब रात में भूख से, ठंड से तड़प तड़प कर कोठी के बाहर दम तोड़ दिए थे। 'फ्यूनरल' के बाद लौन' पर बैठे बैठे पाल ने डी०एस० साहेब से कहा था। मैं और मसेज पाल रात भर इस बूढ़े के साथ बैठे रहे। हमने पूरी कोशिश की थी इसकी जान बचाने की, किन्तु......। एक और याद ताजी हो आयी किस प्रकार पाल व अन्य अधिकारियों ने पवित्र गिरजे का सौदा किया था एक वर्ष। उस पैसे से उसने क्या किया था तब? उसका सारा शरीर ठंडे पसीने से लथपथ हो गया। उसे ऐसा आभास हुआ यह पीसना नहीं किन्तु असंख्य पापियों का खून है जो उसके शरीर पर चिपकता जा रहा है और एक दिन यह इतना बढ़ जायेगा कि उसका और पाल का सम्पूर्ण व्यक्तित्व उसमें डूब जायेगा। उसके मन में आया। इस थेथे खोखले पन को यर्थाथ की नग्नता से भर दे, – पाट दे। किन्तु वह अपने आप से कभी समझौता नहीं कर पाई। पाल उसकी एक मात्र कमजोरी थी वह नहीं चाहती थी प्रसिद्ध पादरी पाल उसके पति का नग्न चित्र समाज देखें। विचित्र जकड़नों के मध्य उसे बेबस जीना पड़ रहा था – मरना पड़ रहा था।

मिसेज पाल जब जब पवित्र शास्त्र का अध्ययन करतीं, कई प्रश्न उसके मस्तिष्क में आते और जाते। वे आदर्श जिन्हें बचपन में उसने सण्डे स्कूल में सीखा था। कंठस्थ किया था और जिस पर आज भी वह विश्वास करती थी। श्रद्धा रखती थी कभी कभी उसके मन से उतरने लगते। जिधर भी वह दृष्टि डालती उसे एक दम उल्टा चित्र दीख पड़ता था। सारे समाज के चेहरे में उसे पाल का चेहरा दीख पड़ता है। जिस का उद्देश्य केवल जीवन को खुशहाली से, मस्ती से, धर्म की ओट में बिताना है और कुछ नहीं।

उस दिन वह समय से पूर्व ही बच्चों को छुट्टी देकर, कोठी वापस चली

आई थी। वापस आकर जो कुछ उसने देखा था। उसे याद कर आज भी उसके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उस गरीब स्त्री के अस्त–व्यस्त वस्त्र और......। दो आत्माओं को एक पवित्र बंधन में बांधने वाला सूत्र ही जब स्वयं अपवित्र हो कलंकित हो तब तब उस समाज का भविष्य क्या होगा? वह सोचने लगी।

कभी कभी उसके मन में आता ऐसे थोथे आदर्शो पर आधारित समाज को ही त्याग दे। कहीं दूर जाकर अनाम जीवन व्यतीत करे किन्तु वह ऐसा भी तो नहीं कर पा रही थी तभी कोई उसके कहीं भीतर से जोर से चिल्लाने लगता चीखने लगता–डर गई? भाग गई? और वह सहम जाती वह भागना नहीं चाहती, हारना नहीं चाहती–बिल्कुल नहीं। ता`फिर वह क्या करें? वह ओर भी उलझ जाती है। इसी प्रकार हार, तड़प और आत्म ग्लानि की स्थिति में उसने पिछले कई वर्षो में लाल लाल बुरांश के फूलों को सूखते और झड़ते देखा था। अर्ध रात्रि गये जब पाल उसे अपनी नग्न बांहों में जकड़ता, कचोटता उसे ऐसा आभास होता पाल एक खुरदरा हल्का स्वयं है जो अन्दर से एकदम खोखला हो चुका है। निर्जीव है और वह घृणा वश उसके फूले बैलून से पेट पर कुहनी इस तरह मारती कि पाल तड़प उठता। तब उसे कितनी लज्जा का अनुभव होता है, वहीं जानती हैं किन्तु वह लाचार हैं बिल्कुल लाचार। केवल यदि पाल ही उसकी समस्या होती तो वह उस पर विजय प्राप्त कर लेती। समझौता कर लेती–किन्तु जब सारा समाज ही भटक गया हो–तो क्या वह पौलूस बन सकती है?

काफी रात बीच चुकी है किन्तु वह अभी भी पलंग पर अशान्त करवटें बदल रही है। सहसा उसकी दृष्टि बेखबर सो रहे पाल पर जाती है। वह एक बार फिर उसके पूर्ण व्यक्तित्व का निरीक्षण, विश्लेषण करने का प्रयास करती है, उसके मौन नेत्र उसके होटों पर टिक जाते हैं जो कि 'पुलपिट' से वतन और सुरक्षा' पर एक लम्बा, घुमावदार भाषण दे रहे होंगे और फिर 'चर्च' के बाद एक चित्र उसके सम्मुख चलचित्र सा चलने लगता है।

सब लोग बाहर 'लौन' पर इधर–उधर, दो–दो, तीन–तीन में बँट गये हैं। कुछ मुंह से मुंह मिलाये बातचीत कर रहे हैं – कुछ खुल्लम खुल्ला। सब व्यस्त हैं। सब मस्त हैं अपनी अपनी बातों में, व्यापारों में। किन्तु मिसेज पाल अकेली एक ओर खड़ी एक टक सब को शून्य नेत्रों से निहार रही है। प्रत्येक झुण्ड की बातें उसे मालूम हैं उनके बीच वह आज भी हमेशा की तरह बिल्कुल अकेली है – बिल्कुल अकेली।

साँझ धरती पर आ गिरी है। रात के आवगमन से वह और भी अशान्त हो उठी हैं। चुपचाप अकेली वह वापस लौट जाती है क्योंकि उसे ज्ञात है पाल आज कई व्यक्तियों से मिलेगा कईयों को खुश करेगा और रात गये घर वापस लौटेगा। एकाएक वह विक्षिप्तों की भांति बड़बड़ा उठती है –

'इन चलती फिरती लाशों का भविष्य क्या होगा? इतिहास क्या होगा....?'

बहस

राष्ट्रीय चरित्रों की भाषा बनाम राजभाषा

ओम प्रकाश गंगोला

[हिन्दी राष्ट्रभाषा घोषित होने के बावजूद देश के राजनेताओं ने 'वोट की राजनीति' की खातिर हिन्दी को अभी तक केन्द्र में नहीं आने दिया है। 'राष्ट्रभाषा' के सवाल को लेकर पिछले अंक से 'आधारशिला' मे बहस शुरू की है। इस मुददे पर कथाकार बटरोही द्वारा लिखे गये लेख के बाद राष्ट्रभाषा के सवाल पर लेखक ओमप्रकाश गंगोला कुछ सवाल उठा रहे हैं। इस बहस को आगे ले जाने व राष्ट्रभाषा के सवाल पर आधारशिला के अगले अंकों में भी अन्य लेखकों की बेबाक राय दी जाएगी। ताकि राष्ट्रभाषा के मुददे पर सार्थक बहस हो सके–सम्पादक]

इस शीर्षक पर परिचर्चा प्रारम्भ करते हुए बटरोही लगता है स्वयं ही चरित्तर करने लगे। उन्होंने पहले ही झटके में गाँधी, मायावती और मुलायम सिंह सबको एक ही साथ बिठा देने का समानता वाद दिया। दो बार हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापति रह चुकने के बाद हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानने से इन्कार कर दिया।' दरअसल बटरोही ने गांधी के बारे में उक्त पंक्तियों से भ्रम फैलाया है। अकबर के महल में जोधाबाई के लिए बने मन्दिर को लेकर उन्होंने जुम्ला जड़ा कि हमारे युग में धर्म नामक संस्था को परिवार या दाम्पत्य नामक संस्था से बडा मान लिया गया है। इस कथन की गुत्थी तो वे ही खोल सकते हैं। इस प्रकार की बातें वस्तुस्थिति की विवेचना में नहीं जाती। हम सारे तर्क के साथ उर्दू को हिन्दी की शैली, उसकी बच्ची भी कहें और फिर शुद्धतावादी, संस्कृतवादी बन उससे परहेज भी करें, यह बात गले नहीं उतरती।

राष्ट्र के बाद ही राष्ट्रभाषा हो सकती है। इस देश में कुछ लोग ऐसे अवश्य रहे जिन्हें इस देश और राष्ट्र से सरोकार था। हमारे आधार चन्द ऐसे ही व्यक्ति रहे हैं। गाँधी उनमें एक थे। आज के राष्ट्रीय चरित्रों के समस्त निश्चय ही उन्हें नहीं बिठाया जा सकता है।

सर्वप्रथम लोकमान्य तिलक ने सन् १६०५ ई० में नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी के एक सम्मेलन मे देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी को देश की राष्ट्रभाषा स्वीकार करने का सुझाव दिया था। महात्मा गाँधी ने भारतीय भाषाओं के विकास के लिए प्रारम्भ से ही आन्दोलन किया। उन्होंने कहा -- "अंग्रेजों ने नहीं बल्कि अंग्रेजी जानने वाले भारतीयों ने भारत को गुलाम बनाया है।" वे यहाँ तक कह गये थे, -- 'लाखों भारतीयों को अंग्रेजी पढ़ाने का मतलब ही है, उन्हें गुलाम बनाना।" सन् १६१७ ई० में ही राष्ट्रभाषा के प्रति गाँधी के विचार स्पष्ट थे। सीखने में सुगम, सम्पर्क माध्यम के रूप में भारत भर में सक्षम, अधिकाश भारतीय भाषाओं में जिसे बोल सकें वही राष्ट्रभाषा हो सकती है।" भारतीय भाषाओं में केवल हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है जिसमें ये सभी गुण है।" वे चरित्र नही रच रहे थे। अंग्रेज व अन्य राष्ट्रविरोधी शक्तियाँ सन् १८५७ ई० के बाद से हिन्दू-मुस्लिम

एकता को तोड़ रही थीं। हिन्दी उर्दू का झगड़ा खड़ा किया जा रहा था। राष्ट्र हर कीमत पर विध्वंस से बचाना था अतः गांधी ने हिन्दुस्तानी गंगा–यमुना सं की बात कही। यह चरित्र नहीं था। कुछ कहने से पहले जिन संपुंजित शक्ति ने हिन्दुस्तान और पाकिस्तान का विस्फोट किया उसके दबाव की कल्पना जानी चाहिए।

हिन्दू और मुसलमानों के बीच सांस्कृतिक आदान प्रदान का लम्बा इति रहा है। आदान प्रदान ही राष्ट्र का स्वास्थ्य ठीक रखता है। एक साथ रहने लोग लड़ते है तो एकता के सूत्र भी खोलते हैं। चौदहवीं सदी से अठारहवीं के अन्त तक यह आदान प्रदान हिन्दी माध्यम से खुलकर चलता रहा। उर्दू लिखने वाला मुसलमान कवि अपनी भाषा को 'हिन्दी' या 'रेखता' कहते थे। अलगाव का अहसास नहीं था। अंग्रेजी राज कायम होने से पूर्व दरबारी कवि हि मुसलमान दोनों ही फारसी सीखते थे।

उर्दू के सबसे बड़े कवि गालिब दरबारी थे पर सामान्य आदमी का दर्द उनकी कविता मे था। जहाँ भी उन्होंने सरल–भाषा का प्रयोग किया उ पंक्तियाँ कहावतें बन गई :–

'हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन।
दिल के खुश रखने को गाालिब ये ख्याल अच्छा है'।

यह बात मीर, सौदा, बहादुरशाह जैसे कवियों पर भी लागू होती है। हि और मुसलमानों के बीच भाषाई आदान–प्रदान का सिलसिला मध्यकाल से जारी था जहाँगीर की जननी और जन्मभूमि दोनों हिन्दी थी। जहाँगीर का शाहजहाँ तो हिन्दी का दक्ष कवि था। औरंगजेब हिन्दी का कवि था। दाराशि का संस्कृत और हिन्दी प्रेम जगजाहिर है। इतना ही क्यों इससे भी पूर्व चौद सदी से ही भाषा का गहरा आदान प्रदान हुआ। जायसी का काव्य इसका जी उदाहरण है। उस्मान शेख नबी, कासिम शाह भी इसी परम्परा के कवि थे।

सर जान मार्शल ने लिखा है कि, ''मानव जाति के इतिहास में ऐसा व कभी नहीं दिखाई पड़ा जब इतनी महान इतनी सुविकसित और इतनी मौलि सभ्यताओं का सम्मेलन और सम्मिश्रण हुआ हो।'' कहने की बात यह है कि, गाँधी संस्कृत निष्ठ हिन्दी के स्थान पर हिन्दुस्तानी की बात कह रहे थे तो अ नहीं कह रहे थे।

इतिहास उनके साथ था। वे एक शक्तिशाली एकजुट राज्य बनाना च थे। इस एकता को तो अंग्रेजों ने पूरी गणना करके तोड़ा। प्रेम चन्द ने समस्या को बहुत स्पष्ट रूप से समझा था,'' बंगाल का मुसलमान बंगला बोल और लिखता है, गुजरात का गुजराती, मैसूर का कन्नड़, मद्रास का तमिल पंजाब का पंजाबी आदि.......।''

यदि अलग–अलग सूबों के मुसलमान अपने–अपने सूबे की भाषा निःसं

भाव से सीख सकते है और उसे यहाँ तक अपना भी बना सकते है कि हिन्दुओं और मुसलमानों की भाषा में नाम को भी कोई भेद नहीं रह जाता, तो फिर संयुक्त प्रान्त और पंजाब के मुसलमान क्यों हिन्दी से इतनी घृणा करते हैं?'' यह प्रश्न था जिसकी जड़े कहीं और थी। यह कुछ लोगों का रचा हुआ एक खेल था, जिसने आगे चलकर इतना बड़ा विध्वंस रचा कि हम आज भी नहीं उबर पाये हैं। हम कहते रहे पर पूरे अन्दर तक उर्दू मुसलमानों और हिन्दी हिन्दुओं की भाषा बनाकर बैठा दी गई है।

ग्रिचर्सन भी यह कहते हुए खेल ही खेल रहे थे कि, 'लल्लू जी लाल के प्रेमसागर से हिन्दुओं को अपनी भाषा प्राप्त हुई।' पर यह पुस्तक दो मुसलमान सहायकों के सहारे लिखी गई थी। जब हिन्दुओं की भाषा बन रही थी तो वहां मुसलमानों का क्या काम था? 'भाषा और समाज' में डॉ० राम विलास शर्मा ने इस पक्ष का विषद विवेचन किया है। उन्होंने निष्कर्ष दिया है, इन सब तथ्यों से यह अनुमान किया जा सकता है कि, सन् सत्तावन के बाद अंग्रेजों ने हिन्दी उर्दू समस्या को जिस तरह उभारा, वह उनकी 'फूट—डालो और राज करो' की नीति का अभिन्न अंग थी।''

यह नीति आज भी सफल है। सतीश जेकब और मार्क टेली की 'अमृतसर : इन्दिरागांधी की आखिरी लड़ाई' नामक पुस्तक में लिखा है कि ''भारत में स्वतंत्रता का केवल हस्तान्तरण हुआ और कुछ नहीं बदला।'' राष्ट्र—भाषा का प्रश्न आज भी हमारे पूर्व आकाओं के चरित्र से आक्रान्त है।

गाँधी हिन्दू मुस्लिम एकता को इस कीमत पर भी पाना चाहते थे कि, अल्प संख्यकों के प्रतिनिधि जिन्ना को प्रधानमंत्री बनाकर राष्ट्र की बागडोर सौंप दी जाय। यह बात तात्कालिक स्वार्थों को पार कर मान ली गयी होती तो बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यको के बीच आदान—प्रदान पुनः होता एक राह बनती। इसी प्रकाश में हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा कहने की बात भी देखी जानी चाहिए। उर्दू की फारसी और हिन्दी की देवनागरी लिपि के बारे में उनका कहना था कि ''क्योंकि फिलहाल मुसलमान यकीनन उर्दू लिपि का इस्तेमाल करेंगे और हिन्दू ज्यादातर देवनागरी में लिखेंगे। अंत में जब हिन्दुओं और मुसलमानों में एक दूसरे के प्रति कसी प्रकार का सन्देह नहीं रह जायेगा, और जब आपस में अविश्वास के सभी कारण दूर कर दिये जायेंगे, तब जो इन दोनों लिपियों में अधिक सशक्त है उसका इस्तेमाल ज्यादा होगा, और इस तरह यह राष्ट्रीय लिपि बन जायेगी।'' यह बात प्रारम्भ में १६१७ के आस पास कही गयी थी। पर यह प्रक्रिया बहुत सहज स्वाभाविक है। यह लिपि के साथ भाषा के स्तर पर कार्य करती। जिससे संस्कृत और अरबी—फारसी के शब्दों के बीच में समताल अवश्य बैठता।

पं० मदन मोहन मालवीय के लगातार प्रयत्नों से बहुत पहले १८८१ में बिहार में अदालतों की भाषा हिन्दी स्वीकार की जा चुकी थी। अदालतों के अफसरों द्वारा प्रयुक्त फारसी—बहुल उर्दू ग्रामीण हिन्दू और मुसलमानों दोनों के

लिए दुरूह थी।

आज भी उर्दू और हिन्दी स्वतंत्र धाराएं बनकर सामान्य व्यक्ति से दूर रही राष्ट्र और राष्ट्र भाषा के संदर्भ में हमें अपने सोच को व्यापकतर और ग्रा बनाना ही होगा।

शौरसेनी अपभ्रंश से निकली जिस पश्चिमी हिन्दी और खड़ी बोली का के रूप में विकास हुआ वह अपने मूल रूप में असहज और अस्वाभाविक नहीं केवल अरबी लिपि के कारण वह भारतीय भाषाओं के इतिहास क्रम से अलग ल लगी और फिर अलग बनती गई। इस लिपि के कारण अलगाव इतना बढ़ा कि आज उर्दू अकादमी के विद्वान परिभाषिक शब्दावली के लिए अरब और ई की सैर करते हैं। अतः हिन्दुस्तानी पर गाँधी चरित्तर नहीं सच रहे हो। बटरोही की बात से भ्रम उत्पन्न होता है।

इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि हिनी का एक रूप राष्ट्र भाषा के रूप में जहाँ वह राज्यों, देश–विदेश के सम्पर्क और न्यायालयों भाषा बनती या बनेगी। वहाँ उसे एक पारिभाषिक, निर्धारित रूप धारण करना यहाँ जब भी शब्द लिए जायेंगे और बनाये जायेंगे वे सभी भारतीय भाषाओं के श होंगे। इसके लिए हमें संस्कृत के पास जाना ही पड़ेगा क्योंकि इसी भाषा से भा की अधिकांश भाषाएं निकलती हैं। हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में दूसरा रूप लोक सम्पर्क भाषा यही वह रूप है जहाँ वह अधिक उदार और लचीली होगी। को देगी और सबसे लेगी। हमारे राष्ट्रीय नेता जब हिन्दुस्तानी की बात करते तो उनके मन में यही लोकरूप था। हिन्दी का एक रूप है जहाँ वह संविधान अनुसूचित भाषाओं में भी स्थान रखती है। यह हिन्दी का वह रूप है जहाँ वह रूप से हिन्दी वालों के हाथों में है। वह हिन्दी भाषी क्षेत्रों के लोगों की इच्छा अकांक्षा के अनुरूप बनेगी। यही वह क्षेत्र है जहाँ उसके साहित्यकार अपनी प्रति के प्रभाव से उसे अपना आकांक्षित रूप देंगे।

हिन्दी के इन रूपों में विभेद न कर पाने के कारण ही बहुत सारी गल फहमियाँ जन्म लेती हैं।

इस सब के बाद भी यह सत्य है कि, राष्ट्रभाषा के साथ चरित्रों के खे अवश्य हुए हैं। यह चरित्रबाजी संविधान निर्माण से ही शुरू हो जाती राममनोहर लोहिया के यह कहने के बाद भी कि 'भाषाओं' का निर्माण कि टकसाल में नहीं होता। वे प्रयोग में रहकर ही विकास करती है। हिन्दी राष्ट्रभषा के रूप में विकसित होने के लिए पन्द्रह वर्ष दियेगये। बस इन्हीं वर्षों राष्ट्रभाषा को नर्गिस बना दिया। जाने कब देश में यह फूल आयेगा?

अपने प्रथम प्रधान मंत्री के बारे में कुछ कहना कठिन है। वे चरित्र नाय थे। 'यादों की बरात' में जोश मलीहाबादी ने लिखा है –

"एक रोजा लखनऊ स्टेशन पर उन्होंने रेलवे अफसरों को बुलाकर बहु

ुरी तरह फटकारा कहा कि आप लोगों ने मुझे निरा जाहिल बनाकर रख दिया ै। हर तरफ हिन्दी के बोर्ड लगे हुए हैं। कुछ पता नहीं चलता कि यह खाने का कमरा है या लैबेटरी।" इसी पुस्तक में आगे लिखा है कि पाकिस्तान से वापस लौटकर नेहरू ने अपने मित्र मलीहाबादी से एक भेंट में कहा "जोश साहब पाकिस्तान को इस्लाम, इस्लामी कलचर और इस्लामी जबान यानी उर्दू की सुरक्षा के लिए बनाया गया था, लेकिन अभी कुछ दिए हुए, मैं पाकिस्तान गया और वहाँ यह देखा कि मैं शेखानी और पायजामा पहने हुए हूं। लेकिन वहाँ की गवर्नमेंट के तमाम अफसर सौ फीसदी अंग्रेजों का लिबास पहने हुए हैं। मुझसे अंग्रेजी बोली जा रही है और हद यह है कि मुझे अंग्रेजी एड्रेस दिया जा रहा है। मुझे इस सूरतेहाल से बेहद सदमा हुआ और मैं समझ गया कि 'उर्दू–उर्दू–उर्दू' के जो नारे हिन्दुस्तान में लगाये गये थे, वे सारे ऊपरी दिल से और खोखले थे। जब मैं खड़ा हुआ तो मैंने उसका उर्दू में जवाब देकर सबको हैरान और परेशान कर दिया। यह बात साबित करती है कि मुझे उनके मुकाबिले में उर्दू से कहीं ज्यादा लगाव है। जोश साहब, माफ कीजिए, आपने जिस उर्दू के लिए अपना वतन टाल दिया, पाकिस्तान में उसे कोई मुंह नहीं लगाता, और जाइये पाकिस्तान?

इन दो बातों में खेल साफ उभर कर आता है। हिन्दी वाले कुछ भी कहें और राजनीतिक नायक उर्दू को मुसलमानों की ही भाषा समझते रहे थे। उसी के अनुसार आचरण कर रहे थे। यह भी विचारणीय है कि भारतीय पहनावे और हिन्दी भाषा के लिए वे क्या दृष्टि रखते थे।

प्रारम्भ में हिन्दी को सक्षम बनाने के लिए पन्द्रह लम्बे वर्षो की समयावधि ने हम पर हमारे बच्चों पर खेले गये खेल में तीन–तीन भाषाओं को सीखने का भार डाला। इस अवधि में चुनाव भी लड़े जाने थे, वोट बैंकों का खेल होना था, स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जो त्याग कर वातावरण बना था उसे टूटना था, लोग कहने वाले थे हमें क्या मिला? इसीलिए राजगोपालाचार्य जैसे हिन्दी के विरोधी हो गए। जब स्थितिया ऐसी बन रही थी कि, हिन्दी को आना ही नहीं था तो तमिलों के लिए अपनी स्थिति स्पष्ट कर लेना ही उचित था। स्वतंत्रता के बाद हम भारतीय नही रह पाये। हम तमिल, बंगाली, पंजाबी ..... अधिक हो गये या बना दिये गये। बुद्धिजीवियों तक यह हवा पहुंची। डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या १९४८ के अन्तर्राष्ट्रीय विश्व भाषा सम्मेलन में पहुंचे। वहा उन्होंने तर्क दिए कि संसार की किसी भाषा को बोलने या समझने वालो के समूह की दृष्टि से हिन्दी का नम्बर विश्व में तीसरा है। अतः हिन्दी को राष्ट्र संघ की 'कार्य भाषा' बनाया जाना चाहिए। पर भारत में जब उसे राष्ट्रभाषा बनाए जाने के लिए उनकी राय ली गई तो उन्होंने तर्कहीनता की सीमा तक उसका विरोध किया। यह भ्रम आज भी जारी है।

ऐसा नहीं है कि इस सब के बाद भी हिन्दी के विकास को गति न मिली हो। हिन्दी अपनी स्थितिगत दबाओं के बीच विकसित हुई है। पारिभाषिक शब्दावली बनी है। तकनीक साहित्य का अदुवाद हुआ है और भारतीय प्रशासनिक सेवाओं

में हिन्दी आई है, प्रान्तीय सेवाओं में अंग्रेजी की अनिवार्यता हटी है पर बहुत निष्ठ और संकल्प के साथ कुछ नहीं हुआ है। हिन्दी ग्रन्थ अकादमियों को करोड़ों रुपये के अनुदान दिए गये हैं। हजारों पुस्तकें सुन्दर मुद्रित रूपों में छपी है। पर उन्हें कोई पढ नहीं सकता। ये पुस्तकें देश की विभिन्न पुस्तकालयों को बांट दी गई है। उन्हें इस इच्छा, और दक्षता से लिखा ही नहीं गया कि वे पढी जा सकें। उन्हें इस चुनौती में लिखा ही नहीं गया कि हिन्दी की क्षमता का वे मानदण्ड बन सकें।

हिन्दी को इस तरह के कार्यों ने भी पीछे धकेला है। भाषा व्यवहार में रहती है तो परखती और मजती जाती है पर इस देश में हिन्दी टकसाल में ढलने के लिए छोड़ दी गई और अंग्रेजी व्यवहार में लाई गई। आज अंग्रेजी पब्लिक स्कूल से पोषित होकर छोटे–बड़े सभी घरों में अपनी कलमें लगा चुकी हैं। वह हमा रिश्तों से लेकर खानपान के स्थानों तक इस कदर फैल आई है कि वह अनिवा और अपरिहार्य हो गई है। इसीलिए बटरोही भी कह गये।'' कान्वेण्टों के इस यु में पूरे प्रदेश के मुसलमानों को मदरसों में ढूसकर मुलायम सिंह यादव मुसलमा का किस तरह भला करेंगे। यह एक महत्वपूर्ण शोध का विषय होगा।'' कान्वेण की भाषा और उनके भविष्य के बारे में बटरोही इतने आश्वस्त है कि उन्होंने ए लेख में उसके बारे में बात ही नहीं की।

आधारशिला का यह अंक आपको कैसा लगा कृपया अवश्य लिखें। आधारशिला का प्रकाशन अब नियमित हो गया है कृपया लौटती डाक से अपना रचना सहयोग दें। हमारा प्रयास होगा कि आगामी अंक और बेहतर हो।

संपादक

प्राकृतिक भण्डार

लुडमिला बुकिना

शान्त, बिल्कुल शान्त, इस झील की तरह –
बिल्कुल शान्त हो जाओ।
पनीली शीतल गहराइयों में, सारी रोशनी बन्द कर दो,
उन समस्त कैद पक्षियों को, उनके पिंजड़ों से आजाद कर दो,
उन्हें स्वछंद उड़ने दो, देखने दो उन्हें खुला आकाश,
हरे छापेदार वृक्ष, य राह में याद करेंगे अपनी भूली हुई खुशिया
पक्षियों, पत्थरों, मक्खियों और पशुओं के नाम नहीं होते –
प्रकृति के उस सुरक्षित भंडार में किसी को याद नहीं आता कि –
सभी के मुंह में जुबान है, सभी पैदायशी बोलने वाले हैं,
और पृथ्वी पर बोले जाने वाली एक ही भाषा में बोल सकते हैं।
एक बहेलिया जब एक हंस को गोली मारता है तो दरअसल
वह उड़ते हुए फरिश्ते में, अपनी ही हत्या करता है।
अचूक निशाना लेकर अचूक भेदन करने वाला वह खुद –
उस उड़ान का आनन्द कभी नहीं जान सकेगा।
प्रकृति के उस सुरक्षित भण्डार ने
जिसकी पत्तियों, घासों ने सही विवेक दिया है,
युगों से, बींधे गये हैं।
मनुष्य,
उसने गोलियों की भाषा बोलना शुरू किया –
किन्तु हसों ने कभी बन्दूक भरना नहीं सीखा,
कभी नहीं सीखा
और निश्चय ही वे कभी सीखेंगे भी नहीं।
इसी में उनका यश सदा सुरक्षित रहेगा।

अनुवाद : ईश्वर शरण सिंहल

जैसे चॉकलेट के लिये पानी

लारा एस्क्विवेल
(मूल स्पेनिश से अनुदित - अशोक पाण्डे)

(लॉरा एस्क्विवेल रचित इस उपन्यास 'कोमो आगुवा पारा चोकोलाते' का प्रकाशन सर्वप्रथम १९८९ में हुआ था। समूचे दक्षिण अमरीका की साहित्यिक दुनिया में इस उपन्यास ने तहलका मचाया था।

लॉरा एस्क्विवेल का जन्म सन् १९५० में मैक्सिको सिटी में हुआ था मूलतः वे फिल्मो का स्क्रीनप्ले लिखती है। सन् १९८५ में उनका स्क्रीनप्ले 'चीदो मुआन' मैक्सिकन अकेडमी ऑफ मोशन पिक्चर्स के एरीएल पुरस्कार के लिये नामांकित हुआ। 'कोमो आगुवा पारा चोकोलाते' उनका प्रथम उपन्यास है। इसका अनुवाद कई भाषाओं में हो चुका है। १९९२ में इस पर एक फिल्म भी बनी जिसे कई पुरूस्कार भी प्राप्त हुए। विशेषज्ञों ने कहा कि लॉरा एस्क्विवेल ने एक नये साहित्यक रूप का सृजन किया है 'ला कोसीना फिक्सियोन' यानी रसोई का साहित्य। अपने शिल्प और एकदम नई शैली के लिहाज से यह एक अद्वितीय उपन्यास है)

अध्याय – १ जनवरी
क्रिसमस रोल्स

सामग्री :
१ कैन सारडीन
१/२ चोरीजो सॉसेज
१ प्याज
आरेगानो
१ कैन सेरानो मिर्च
१० कड़े रोल्स

बनाने की विधि :

बहुत सावधानी से प्याज को बारीक–बारीक काटिये। प्याज काटते हुए आप रोएँ नहीं (जो बहुत झुंझलाने वाला होता है), इसके लिये थोड़ा सा अपने सिर पर रख लें। प्याज काटते वक्त रोने में सबसे बड़ी परेशानी यह है कि एक बार आँसू निकलने शुरू हुए कि वे निकलते ही जाते हैं – आप इन्हें रोक ही नहीं सकते। पता नहीं आपके साथ ऐसा कभी हुआ या नहीं, मेरे साथ तो ऐसा कई बार हो चुका है। मामा कहा करती थी ऐसा इसलिये था कि मैं प्याज के प्रति ज्यादा संवेदनशील थी, जैसे मेरी चचेरी दादी – तीता।

तीता प्याज के प्रति इतनी संवेदनशील थी, लोग कहा करते थे, जब भी प्याज काटे जाते, वह रोती ही जाती थी, जब वह परदादी के पेट में थी उसकी

सिसकियाँ इतनी तीव्र होती थीं कि खाना बनाने वाली, नाचा जो आधी बहरी थी भी आराम से सुन लेती। एक बार उसकी सिसकियाँ इस कदर तेज थीं। कि परदादी को प्रसव पीड़ा समय से पहले ही शुरू हो गई। इससे पहले कि उनके मुह से एक शब्द या कराह भी निकल पाती, रसोईघर की मेज पर नूडल सूप, पुदीने और लहसुन और हाँ प्याज की महक के बीच, तीता समय से पहले ही दुनिया में आ गई। तीता को वह चपत मारने की जरूरत ही नहीं पडी जो नवजात शिशु को रूलाने के लिये मारी जाती है, क्योंकि वह रोती हुई पैदा हुई थी, शायद इसलिये भी कि उसे तभी मालूम था कि इस जन्म में उसका ब्याह नहीं हो पाएगा, जैसा कि नाचा बताती थी, तीता एक तरह से आँसुओं में बहती हुई इस दुनिया में पहुँची; आँसुओं का ज्वार मेज के किनारे से रसोईघर के फर्श पर बाढ़ की शक्ल में गिरता रहा।

उस दोपहर, कोलाहल शान्त हो चुकने के बाद, जब सूरज ने भी आँसुओं को सुखा दिया था, नाचा ने लाल पत्थरों के फर्श से आँसुओं का सूखा हुआ नमक बुहार कर इकठ्ठा किया। नमक इतना था कि उससे दस पाउन्ड का एक कट्टा भर गया – रसोई में लम्बे समय तक उसे इस्तेमाल किया गया। शायद अपने असामान्य जन्म के कारण ही तीता को रसोई से विशेष लगाव रहा, जहाँ उसने अपने जीवन का लम्बा हिस्सा गुजारा।

तीता जब दो दिन की थी, मेरे परदादा दिल का दौरा पड़ने के कारण चल बसे और इस सदमे से परदादी की छातियाँ सूख गई। चूकि उस जमाने में पाउडर का दूध नहीं मिलता था और कोई नर्स भी नहीं मिली जो बच्ची को दूध पिला सकती, सारे घर में बच्ची की भूख को लेकर कोहराम मच गया। नाचा ने, जिसे खाना पकाने के बारे में सब कुछ आता था, तीता के पोषण का जिम्मा लेने का प्रस्ताव किया। उसे लगा बच्ची के पेट को "शिक्षित करने" का यह बेहतरीन अवसर था, हालांकि उसने शादी नहीं की थी, न उसके बच्चे ही हुए थे। उसे लिखना पढ़ना नहीं आता था लेकिन पाकशास्त्र की वह विशेषज्ञ थी। मेरी परदादी, मामा एलेना ने, कृतज्ञतापूर्वक उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। अपने शोक के बावजूद उनके पास करने को बहुत सारे काम थे। उन्हें रैन्च की जिम्मेदारी संभालनी थी – बच्चों के भोजन और पढाई लिखाई का खर्च वहीं से निकलना था, क्योंकि इतने के तो वे अधिकारी थे ही। इस सबके बाद नवजात बच्ची को खिलाने – पिलाने का जिम्मा बहुत कष्टप्रद होता।

उस दिन से रसोईघर तीता का साम्राज्य बन गया। चाय और मक्के के पतने सूप की खुराक पर तीता तन्दुरूस्त और बड़ी होती गई। खाने से संबंधित किसी भी बात पर तीता की छठी इन्द्रिय का रहस्य शायद यही था कि उसके खाने के समय रसोई की दिनचर्या से जुड़े हुए थे। सुबह जब उसे बीन्स के उबलने की खुशबू आ जाती, दिन में उसे पता लग जाता कि पानी तैयार है और मुर्गी के टुकड़े करने का समय हो गया, शाम को डबलरोटी के बेक हो जाने का भी उसे आभास हो जाता था। तीता जान जाती उसे खाना खिलाने का समय हो गया है।

कभी–कभी वह अकारण भी रोया करती। जैसे नाचा जब प्याज काटती थी, लेकिन चूंकि दोनों ही इसका कारण जानते थे, वे इस पर ध्यान नहीं देते थे। उसके लिये आंसू मनोरंजन का साधन हो गये थे। इसी कारण बचपन में तीता खुशी और दुख के आंसुओं में फर्क नहीं कर पाती थी। तीता का हंसना भी रोने जैसा होता था।

तीता के लिये जीवन के आनन्द भोजन के आनन्द से जुड़े हुए थे। बाहरी दुनिया को समझना ऐसे व्यक्ति के लिये आसान नहीं था, जीवन के बारे में जिसका ज्ञान रसोईघर की जानकारी पर आधारित हो। रसोईघर के दरवाजे के उस पार की दुनिया एक बहुत बड़ा विस्तार थी। वहीं दरवाजे के इस तरफ – रसोई, पिछवाड़े का बरामदा और मसालों का बगीचा – सब कुछ तीता का था – उसका राज्य था वह।

उसकी बहनें उससे बिल्कुल उलटी थीं – इनके लिये तीता की दुनिया अनजान जोखिमों से भरी हुई थी और वे उससे भयभीत रहती थी। उनके ख्याल से रसोईघर में खेलना मूर्खतापूर्ण और खतरनाक था। एक बार तीता ने उन्हें मना लिया कि वे रसोई में आकर उसके साथ लाल गर्म तवे पर पानी की बूँदों का आश्चर्यजनक नृत्य देखें।

अपने गीले हाथों से तवे पर पानी की बूंदे छिड़कती हुई तीता जब गाना गा रही थी, ताकि वे भी नाचें रोसौरा हक्की–बक्की एक कोने में दुबकी खड़ी थी। वहीं गरत्रूदिस को यह बेहद आकर्षक लगा और उत्साहपूर्वक वह भी इस खेल में शामिल हो गई – ऐसा उत्साह वह हर उस चीज़ में दिखाती थी, जिसमें लय, गति और संगीत शामिल हों। फिर रोसौरा ने स्वयं को भी शामिल करने की कोशिश की – लेकिन उसने बमुश्किल अपने हाथ गीले किये थे और वह बहुत सावधानी से पानी छिड़क रही थी और उस तरह का प्रभाव पैदा नहीं हो रहा था। तीता ने उसके हाथ पकड़कर तवे के नजदीक ले जाने चाहे रोसौरा ने प्रतिवाद किया तो तंग आकर तीता ने इसके हाथ छोड़ दिये, जो सीधा तवे से जा लगे। तीता की पिटाई हुई और आगे से बहनों के साथ इसकी दुनिया में खेलने की मनाही हो गई। फिर नाचा उसकी सहेली बन गई। भोजन से संबंधित, उन्होंने कई खेल बनाये। जैसे गाँव के बाजार में एक दिन उन्होंने एक आदमी को गुब्बारों से जानवरों की आकृतियाँ बनाते हुए देखा तो सॉसेज से जानवर बनाने की बात उन्हें सूझी। उन्होंने हर किस्म के जानवर तो बनाये ही, कुछ की उन्होंने रचना भी की – हंस की गरदन, कुत्ते की टांगे और घोड़े की पूंछ वाले जीव और ऐसे ही कई।

उसके के लिये सॉसेज को बेहद धीमी आँच पर तला जाना चाहिये ताकि वे भूरे भी न हों और पूरी तरह पक भी जायें। बाहर निकाल कर, पहले से कांटे निकली हुई सारडीन इसमें मिला दें। सारडीन की त्वचा पर अगर कोई काले धब्बे हों तो चाकू से उन्हें खुरच लिया जाना चाहिये। इसके बाद प्याज, मिर्च और सारडीन के साथ पिसा हुआ ऑरेगानो इसमें मिला दें। रोल भरने से पहले इस मिश्रण को हल्का ठोस हो जाने के लिये छोड दें।

रोल्स बनाने की प्रक्रिया का यह हिस्सा तीता को बेहद पसन्द था। रोल्स में भर जाने से पहले इस भरवां मिश्रण की गन्ध अच्छी लगती थी। गन्धों में बीता हुआ समय लौटा लाने की ताकत होती है – आवाजों और इन गन्धों के साथ, जिनका वर्तमान से कोई संबंध नहीं होता। गहरी सांस लेकर तीता को इस मिश्रण को सूंघना पसन्द था – पूर्व परिचित ग्रन्थ और धुआं उसे इसकी स्मृति के संसार में पहुँचा देते।

यह याद करने की कोशिश करना व्यर्थ था पहली बार उसने इन रोल्स को कब सूंधा होगा। वह याद कर भी नहीं सकती थी, शायद यह उसके पैदा होने के पहले हुआ था। यह सारडीन और सॉसेज का विचित्र मिश्रण रहा होगा जिसके कारण उसने अपने दिव्य अस्तित्व के स्थान पर मामा एलेना के गर्भ में दे ला गार्जा परिवार में उसकी बेटी बनने का फैसला किया, ताकि वह इस परिवार के अलौकिक सॉसेज़ और स्वादिष्ट भोजन का आनन्द ले सकें।

मामा एलेना के रैन्च पर, सॉसेज बनाने का काम एक अनुष्ठान जैसा होता था, पहले दिन वे लहसुन छीलते, मिर्च साफ करने और मसाले पीसने का काम शुरू करते थे। घर की सब औरतों को इसमें हिस्सा लेना होता था – मामा एलेना, इनकी बेटियाँ गरगूदिस, रोसौरा और तीता, खाना पकाने वाली नाचा, और चेन्चा, घर की नौकरानी। दोपहर वे डाइनिंग रूम की मेज के गिर्द इकठ्ठा होते और बातों–बातों में समय जैसे उडता जाता जब तक कि अन्धेरा होने लगता। तब मामा एलेना कहतीं :

"आज के लिये इतना ही बहुत है"

कहते हैं अच्छे श्रोता के लिये एक ही शब्द काफी होता है, सो यह सुनते ही वे झट से उठकर अपने कामों में लग जातीं। पहले मेज साफ करनी होती थी, उसके बाद हरेक को काम बॉटे जाते : एक को मुर्गियां इकठ्ठा करना, दूसरी को नाश्ते के लिये कुएँ से पानी निकालना, तीसरी को चूल्हे के लिये लकड़ी इकठ्ठा करना। उस दिन न कपड़ों में इस्तरी होती थी, न कढ़ाई, न सिलाई। काम पूरा हो जाने पर वे अपने अपने कमरों में जाकर पढ़तीं, प्रार्थना करतीं और सो जातीं। एक दोपहर, मामा एलेना द्वारा मेज छोड़ने की अनुमति देने के पहले तीता ने, जो तब पन्द्रह की थी, कांपती आवाज में बताया कि पेद्रो मारक्विज़ उनके साथ बात करना चाहता है .....

एक लम्बी चुप्पी के बाद, जिसके दरम्यान तीता को अपनी आत्मा सिकुड़ती सी लगी, मामा एलेना ने पूछा :

"और ये श्रीमान मेरे साथ क्यों बात करना चाहते हैं?"

तीता का जवाब मुश्किल से ही सुना जा सकता था।

"मुझे पता नहीं"

मामा एलेना ने तीता पर एक निगाह डाली, जिसमें, तीता को लगा कि व
स परिवार पर किये गये अत्याचार भरे हुए थे, और कहा :

"अगर वह तुम्हारा हाथ माँगना चाहता है तो उससे कहो भूल जाये। व अपना और मेरा समय बरबाद करेगा। तुम्हें अच्छी तरह मालूम है परिवार क सबसे छोटी लड़की होने के नाते तुम्हें उस दिन तक मेरा ख्याल रखना होगा ज तक मैं मर नहीं जाती।"

उसके बाद मामा एलेना हल्के से अपने पैरों पर खड़ी हुई। चश्मा अप ऐप्रन की जेब में रखा और एक अन्तिम आदेश के स्वर में कहा।

"आज के लिये इतना ही बहुत है"

तीता जानती थी मामा एलेना के घर में बहस करना मुमकिन न था, प अपने जीवन में पहली बार वह अपनी माँ के आदेशों का विरोध करना चाहती थी

"लेकिन मेरे विचार से....."

"तुम्हारा कोई विचार नहीं हो सकता, और इस बारे में मैं और कुछ न सुनना चाहती, पीढियों से इस परम्परा का हमारे परिवार में किसी ने विरोध न किया है, और न ही मेरी कोई बेटी ऐसा करेगी।"

तीता ने अपना सिर झुका लिया जिस तेजी से उसे अपना भाग्य मालू हुआ था, उसी तेजी से उसके आँसू मेज पर गिरने शुरू हो गये। उस दिन के ब से तीता और मेज़, दोनों को मालूम हो गया कि तीता को अपनी माँ के पागलप भरे फैसले के सामने झुकने के विरोध में कहीं कोई आवाज नहीं होगी। मेज प तीता के कड़वे आंसू गिरते रहे, जो उसने पहली बार अपने जन्म के वक्त गिरा थे।

फिर भी तीता ने समर्पण नहीं किया। उसके भीतर कई शंकाएँ उमड लगीं वह यह जानना चाहती थी कि परिवार में यह परम्परा शुरू किसने की थी कितना अच्छा होता अगर वह उस अति बुद्धिमान व्यक्ति को इस दोषरहित योज का एक छोटा सा दोष बता पाती। यदि तीता की शादी नहीं होगी, बच्चे नहीं हों तो बुढ़ापे में उसकी देखभाल कौन करेगा? है कोई समाधान? या यह उम्मीद व जाती थी कि अपनी माँओं की देखभाल करने वाली बेटियाँ माँ–बाप के मरने व बाद खुद भी ज्यादा समय तक जीवित नहीं रहेंगी? और उन औरतों का क्या हो जो शादी के बाद भी निःसन्तान रह जाएँगी? वह यह भी जानना चाहती थी कि अध्ययन के आधार पर यह भार सबसे छोटी बेटी पर लादा गया, क्यों सबसे बड़ पर नहीं। क्या कभी भी बेटों के ख्यालों का ध्यान रखा गया? अगर उसे शादी की इजाजत नहीं थी तो क्या वह प्रेम कर सकती थी? या वह भी, नहीं?

तीता को अच्छी तरह मालूम था उसके वह सारे प्रश्न बिना उत्तरों के सद के लिये दफन कर दिये जायेंगे। यह दे ला गाजी परिवार की परम्परा थी – बिन

कुछ कहे सुने तुरन्त आदेश मानना। तीता की तरफ कोई ध्यान न देती हुई मामा ऐलना रसोई से बेहद गुस्से में उठ कर चल दीं, और हफ्ते भर तक उससे एक शब्द तक नहीं बोली।

उनके बीच वार्तालाप तब शुरू हुआ जब मामा एलेना घर की स्त्रियों को कपड़े सीता हुआ देख रही थीं और उन्होंने पाया कि जो कुछ तीता सिल रही थी वह सबसे अच्छा तो था पर उसमें सीने से पहले टाँके नहीं लगाए गये थे।

"बहुत अच्छा" वे बोली "तुम्हारी सिलाई में कोई दोष नही – मगर तुमने पहले टांके नहीं लगाये शायद"

"नहीं" तीता बोली – बातचीत दुबारा शुरू होने पर वह चकित थी।

"तब जाओ, इसे उधेडकर टांके लगाओ, दुबारा सियो और मुझे दिखाओ और याद रखो आलसी आदमी और लोभी आदमी को एक ही रास्ता दो बार तय करना पड़ता है।

"लेकिन अगर वह कोई गलती करे तब, और अभी एक पल पहले आपने कहा था कि मेरी सिलाई...."

"तो तुम फिर से बगावत पर उतारू हो? यही काफी है कि तुमने सिलाई के नियमों को तोड़ने का साहस किया"

"माफ करना, मामी, ऐसा फिर नहीं होगा"

इससे तीता, मामा एलेना का गुस्सा शान्त करने में कामयाब हुई। इस बार वह बेहद सतर्क थी – उसने बिल्कुल सही स्वर में उन्हें 'मामी' कहकर संबोधित किया था। मामा एलेना को लगता था कि 'मामा' शब्द में थोड़ा सा अनादर का सा भाव होता है इसलिये बचपन से ही उन्होंने अपनी बेटियों को उन्हें 'मामी' कहकर पुकारने की हिदायत दी हुई थी। तीता ही इसका विरोध करती थी और वही इस शब्द को समुचित आदर के साथ नहीं कहती थी – इसके लिये वह कई थप्पड खा चुकी थी। लेकिन इस बार उसका सम्बोधन बिल्कुल सही था। मामा एलेना को लगा अन्ततः उन्होंने अपनी सबसे छोटी बेटी पर काबू पा लिया है।

दुर्भाग्यवश उनकी उम्मीदें झूठी निकलीं, क्योंकि अगले दिन पेद्रों मारक्विज़ अपने सम्मानित पिता के साथ उनके दरवाजे पर था। वे नीता का हाथ मांगने आये थे। उसके आने से सारे घर में कोहराम मच गया क्योंकि उसके आने की उम्मीद किसी को न थी। कुछ ही दिन पहले तीता ने नाचा के भाई के माध्यम से पेद्रो तक यह सन्देशा भिजवाया था कि वह इस रिश्ते का ख्याल छोड दे। नाचा के भाई ने सौगंध खाकर कहा था कि उसने सन्देशा पहुंचा दिया था लेकिन इस समय वे घर के अन्दर थे। मामा एलेना ने उनका स्वागत किया। बहुत ही शिष्टता के साथ उन्होंने समझाया क्यों तीता का विवाह संभव नहीं।

"लेकिन अगर आप वाकई पेद्रो की शादी करना चाहते हैं तो मेरी बे
रोसौरा उपलब्ध है। वह तीता से दो बरस बड़ी है और शादी के लिये तैय
भी....."

इस पर चेन्चा, जो दोन पास्कुआल और उनके पुत्र के लिये कॉफी औ
बिस्कुट लेकर आ रही थी, ट्रे समेत करीब करीब मामा एलेना पर गिर पड़ी। मा
मांगकर वह सीधा रसोई की तरफ भागी, जहाँ तीता, रोसौरा और गरगूदिस बेस
से इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वह सीधी कमरे में घुसी, तो उन सबने सारे क
रोक दिये ताकि चेन्चा का हर शब्द सुन सकें।

वे रसोई में क्रिसमस रोल्स बना रही थीं। जैसा कि नाम से जाहिर है
रोल्स क्रिसमस के आसपास बनाये जाते हैं, लेकिन आज वेतीता के जन्मदिन
मौके परबन रहे थे। वह सोलह की हो जाएगी और इस मौके को वह अपने सब
प्रिय व्यंजन के साथ मनाना चाहती थी।

"ये भी कोई बात है? तुम्हारी माँ शादी के लिये तैयार होने के बारे में
बात करती है। जैसे वो एन्चिलादा की प्लेट तैयार होने के बारे में हो। और इस
भी बुरा यह कि वे बिल्कुल अलग-अलग हैं। कोई ऐसे इन्चिलादा और ताकोस
अदला बदली कैसे कर सकता है।"

चेन्चा ने ऑखों देखा हाल इसी प्रकार सुनाना जारी रखा-अपनी शैली
तीता को पता था, चेन्चा कई बार बढ़ा चढ़ाकर बात करती थी। सो उसने अ
दिल को काबू में रखा। उसने जो कुछ सुना था उस पर यकीन नहीं किया।
को बिल्कुल शान्त दिखाते हुए उसने रोल्स को काटना जारी रखा ताकि न
और उसकी बहनें उन्हें भर सकें।

सबसे अच्छा है घर में बने हुए रोल्स का इस्तेमाल किया जाये। कड़े से
बेकरी में बहुत आसानी से मिल जाते हैं। लेकिन वे छोटे होने चाहिये, इस व्यं
के लिये बड़े वाले काम में नहीं लाये जा सकते। रोल्स के भरने के बाद उन्हें
मिनट तक बेक करें और गरम गरम परोसें बेहतर परिणामों के लिये अच्छा
होगा कि रोल्स को कपड़े में लपेटकर रात भर छोड़ दें ताकि सॉसेजेज
चिकनाई रोटी सोख लें।

जब तीता रोल्स को अगले दिन के लिये लपेट चुकी थी, मामा एलेना
भीतर आकर उन्हे सूचित किया कि उन्होंने प्रद्रो के विवाह की बात मान ली है
रोसौरा के साथ।

चेन्चा की बताई बात के निश्चित हो जाने पर तीता को लगा उसकी
एक भीषण ठण्ड से भर गई है। एक तीखे विस्फोट से वह इतनी ठण्डी और शु
पड़ गई कि उसके गाल जलने लगे और लाल हो गये - बगल में रखे हुए से
की तरह, वह ठण्ड बहुत देर तक रही और तीता को जरा भी आराम नहीं पहुँ
यहाँ तक कि नाचा ने उसे पास्कुआल मारक्विज़ उनके बेटे को रैंच के गेट

छोड़ते वक्त सुनी उनकी बातें भी तीता को बताई। नाचा उनके पीछे पीछे गई थी बहुत खामोशी से, ताकि बाप–बेटे की बातें सुन पाये। दोन पास्कुआल और पेद्रो धीमे संयत और क्रोधित स्वरों में बोल रहे थे।

"तुमने ऐसा क्यों किया पेट्रो? यह मखौल जैसा लगेगा–तुम्हारा रोसौरा से ब्याह करना, उस अमर प्रेम का क्या हुआ जो तुम्हे तीता से था, जिसकी तुमने सौगंध खाई थीं? तुम्हारा वादा क्या हुआ?"

"वो तो मैं निभाऊँगा ही। अगर आपको बताया जाये कि जिस लड़की से आप प्यार करते हैं उससे शादी असंभव है तो उसके पास रहने का सबसे सही रास्ता यही है कि उसकी बहन से शादी कर ले आदमी। क्या आपने भी यही नहीं किया होता?

इसका उत्तर नाचा नहीं सुन पाई क्योंकि उसी वक्त रैन्च का कुत्ता पुल्के, एक खरगोश को बिल्ली समझकर, उसके पीछे भौंकता हुआ वहाँ से गुजरा

"तो तुम बिना प्रेम के शादी करने का फैसला कर चुके हो?

"नहीं पापा, मैं तीता के प्रति एक महान प्रेम के साथ यह शादी करूंगा, जो कभी नहीं समाप्त होगा"

उनके पैरों के नीचे सूखी पत्तियों की कड़कड़ाहट के कारण, उनकी आवाजें सुनना काफी मुश्किल होता गया। कितनी विचित्र बात है, नाचा, जिसे कम सुनाई देता था, वह कहे कि उसने इस वार्तालाप को सुना था। जो भी हो; तीता ने नाचा को धन्यवाद दिया – लेकिन पेट्रो के प्रति उसके दिल में बर्फीली भावनाएं नहीं बदलीं। यह कहा जाता है कि बहरे लोग सुन नहीं पाते लेकिन समझ लेते हैं। शायद नाचा ने वह सुना था, जिसे कहने में और सभी को भय लगता था। उस रात तीता सो नहीं सकी। उसे जो महसूस हो रहा था, उसे वह शब्दों में नहीं ढाल पा रही थी। कितना दुर्भाग्यपूर्ण है, उस वक्त तक ब्रहमाण्ड में 'ब्लेंक हाल' की खोज नहीं हो पाई थी, शायद तब वह अपने सोने के बीचोंबीच उस ब्लैक–होल को महसूस कर पाती, जिसमें से अनन्त ठण्ड बह रही थी।

जब भी वह आँखे बन्द करती, उसके दिमाग में पिछले क्रिसमस का दृश्य घूम जाता, जब पहली बार पेट्रो और उसके परिवार को आमन्त्रित किया गया था; वह दृश्य और भी साफ होता गया, उतनी ही तीखी होती गई उसके भीतर की ठण्ड। उस शाम के बाद इतना समय गुजर जाने के बावजूद, उसे सब कुछ अच्छी तरह याद था' आवाजें, खुशबुएँ, कैसे उसकी पोशाक ताजा पॉलिश किए हुए फर्श पर घिसट रही थी, और पेट्रो की निगाहें ..... वे निगाहें! वह मिठाइयों की ट्रे लिये मेज की तरफ बढ़ रही थी जब उसने पेद्रो की निगाहों को महसूस किया जो उसकी त्वचा को जला रही थी। उसने सिर घुमाया तो उसकी निगाहें पेद्रो से जा टकराई। उस समय से महसूस हुआ कि गुंदे हुए आटे को गरम तेल में छोड़े जाने पर कैसा लगता होगा। जो गर्मी उसके शरीर में प्रवेश कर रही थी। उसे भय हुआ

उसके भीतर से बुलबुले उठने शुरू हो जाएंगे – उसके चेहरे, पेट, हृदय, छातियों से – चूरन की तरह उसकी निगाहों का सामना करने में असमर्थ पाकर वह कमरे के दूसरी ओर चली गई जहाँ गरगूदिस पियानो पर "ओहोस दे हुवेनतूद" – वाल्त्ज बजा रही थी। उसने वहीं बीच की एक छोटी मेज पर अपनी ट्रे रखी, और बिना यह जाने वह क्या कर रही है, सामने रखी नोयो शराब का एक गिलास उठाकर अपनी पड़ोसन पाकीता लाबो के बगल में जा बैठी। लेकिन पेद्रो से इतनी दूरी भी काफी नहीं थी। इसे अपना रक्त नसों को फाडता सा लग रहा था। उसके चेहरे पर लाली छाई थी और तमाम कोशिशों के बावजूद उसकी निगाहें किसी एक चीज पर नहीं टिक पा रही थीं। पाकीता ने उसे देखा तो बहुत चिन्तित होकर पूछा :

"काफी तेज है ना ये शराब?"

"माफ कीजिएगा – आपने कुछ कहा"

"तुम थोड़ा परेशान दिख रही हो तीता, सब ठीक तो है?"

"जी हाँ, शुक्रिया"

"तुम इतनी बड़ी तो हो चुकी हो कि खास मौकों पर एक ड्रिंक ले सको, लेकिन शैतान लड़की, क्या तुम्हारी माँ ने इसकी इजाजत दी है? मैं देख रही हूँ तुम उत्तेजित दीखती हो – कांप भी रही हो – इसलिये बेहतर होगा अब और न पियो – अपना तमाशा बनाना तो तुम नहीं चाहोगी"

यह अन्तिम बात थी ! पाकीता को लगता कि वह नशे में है, वह नहीं चाहती थी कि पाकीता के दिल में थोड़ा भी सन्देह रह जाये वरना वह उसकी माँ को बता देती, माँ के भय से कुछ पल को तीता पेद्रो को भूल गई। वह पूरी शिद्दत से पाकीता को यह यकीन दिलाने लगी कि वह बिल्कुल ठीक से सोच रही है। और चैतन्य है। उसने उससे बातचीत की, और यहां तक कि नोयो ने शराब बनाने की विधि भी उसे बतलाई। इस शराब को बनाने के लिये चार औंस आड़ू और आधा पाउण्ड खुबानी को चौबीस घण्टे पानी में भिगाना होता है ताकि उनके छिलके उतारे जा सकें; फिर उन्हें छीलकर, और कुचलकर पन्द्रह दिन तक गरम पानी में भिगाया जाना चाहिये – इसके बाद शराब डिस्टिल की जाती है। जब पानी में ढाई पाउण्ड चीनी घुल जाये, उसमें सन्तरे के फूलों का चार औन्स पानी मिलाकर हिलाया जाना चाहिये। ताकि पाकीता के मन में जरा भी सन्देह न रह जाये, तीता ने जैसे खुद से बात करते हुए उसे बताया कि पानी के पात्रों में २.०१६ लीटर आता है, न अधिक न कम।

सो जब मामा एलेना, पाकीता के पास पूछने आई कि उन्हें ठीक लग रहा है या नहीं, उन्होंने बड़े उत्साह से जवाब दिया :

"हाँ, हाँ ! सब ठीक है – आपकी बेटियाँ लाजवाब हैं – मुझे बातचीत में

आनन्द आ रहा है।"

मामा एलेना ने तीता को रसोई से मेहमानों के लिये कुछ लाने को भेज दिया। उसी समय पेद्रो भी वहाँ से "इत्तफाक़न" गुजरा और उसने तीता की मदद करने की पेशकश की। तीता बिना कुछ कहे रसोई की तरफ भाग गई। पेद्रो की उपस्थिति उसके लिये बेहद असुविधाजनक थी। वह उसके पीछे पीछे रसोई में आया तो तीता के उसके हाथों में स्नैक्स की एक ट्रे थमा दी जो रसोई की मेज पर उठाए जाने की प्रतीक्षा में रखी हुई थी।

उस क्षण को वह कभी नहीं भूल पाएगी जब वे दोनों एक साथ एक ही ट्रे उठाने को झुके और उनके हाथ एक दूसरे से छू गये।

उस समय पेद्रो ने अपने प्रेम का इज़हार किया।

"सेन्योरीता तीता, इस अवसर का लाभ उठाते हुए जब तुम्हारे साथ मैं अकेला हूँ, मैं कहना चाहता हूं, मुझे तुमसे बहुत प्यार हो गया है। मैं जानता हूँ यह सब बहुत अचानक कह रहा हूँ पर तुम अकेली कहाँ मिल पाती हो, सो मैंने फैसला किया कि आज रात तुम्हें बता दूंगा। मैं सिर्फ इतना पूछना चाहता हू कि क्या मुझे तुम्हारा प्यार प्राप्त हो पायेगा।"

"मैं क्या कहूँ ..... मुझे सोचने का थोड़ा समय चाहिये"

"नहीं, नहीं ऐसा नहीं हो सकता। मुझे अभी उत्तर चाहिये; प्यार के बारे में सोचा थोडे ही जाता है, या वह महसूस होता है या नहीं होता। मैं बहुत कम बातें करता हूँ, लेकिन मेरे शब्द मेरी प्रतिज्ञा हैं। मैं कसम खाता हूं मैं तुमसे हमेशा प्यार करता रहूंगा और तुम? क्या तुम भी मेरे बारे में ऐसा ही सोचती हो?"

"हाँ"?

हाँ, एक हजार बार हाँ। उस रात के बाद वह उसे हमेशा के लिये प्रेम करती रही। और अब उसे छोड़ना था। यह अशालीन होता है कि अपनी बहन के होने वाले पति से प्यार किया जाये। अब किसी तरह तीता को अपने दिमाग से उसे दूर करना था ताकि वह सो सके। उसने दूध का गिलास और वह क्रिसमस रोल खाना शुरू किया जो नाचा ने छोड़ रखा था; यह उपाय पहले कारगर साबित हो चुका था। नाचा जानती थी तीता का कोई भी ऐसा दर्द नहीं जो क्रिसमस रोल खाने से दूर न हो जाये। मगर इस बार ऐसा नहीं हुआ। उसके पेट में जो खालीपन गुड़गुड़ा रहा था, उससे कोई आराम न था। उल्टे उसका जी मिचलाने लगा। उसे लगा कि पेट का खालीपन भूख के कारण नहीं, बल्कि वह दुख की एक ठण्डी अनुभूति था। उस भीषण ठण्ड से वह राहत पाना चाहती थी। उसने पहले ऊनी कपड़े पहने फिर एक भारी लबादा डाल लिया। ठण्ड अब भी लग रही थी। उसने ऊनी चप्पलें पहनीं और दो शॉल और ओढ़ लिये। आखिरकार वह अपने सिलाइं वाले बक्से के पास गई। उसने वह चादर निकाली जिसे उसने उस दिन

बनाना शुरू किया था जिस दिन पहली बार पेद्रो ने उससे शादी की बात की थी क्रोशिए की बनी, ऐसी चादर को पूरा होने में करीब एक साल लगता है। पेद्रो आ तीता ने अपनी शादी से पहले इतने ही समय रुकने की योजना बनाई थी। उसने धागे का इस्तेमाल करने का फैसला किया। ताकि वह बर्बाद न जाये, सो उसने चादर पर काम करना शुरू किया – सुबह होने तक वह रोती रही चादर पर काम करतीं रही आखिर उसने उसे भी अपने ऊपर डाल लिया। इससे भी कोई फायद नहीं हुआ, न उस रात न और कई रातों को, जब तक वह जीवित रही, तीता उस ठण्ड से खुद को आजाद नहीं कर सकी।

जारी......

अगले माह का व्यंजन

चाबेला वैडिंग केक



पंजाबी कविता-एक

पल का रेखा–चित्र

हरभजन सिंह हुंदल

अनुवाद - फूलचन्द मानव

जिस दिन सुख की ख़बर मिलेगी
मां की बुझी हुई आंखों से
नज़र मिलेगी

दरवाजे पर दस्तक होगी सुखद सुनहरी
कागा बोलेगा मुडेर पर
बूढ़ी अम्मा घी के दीप जलाएगी
पेटी में से फुलकारी लेकर आएगी
चावों सहित दिखाएगी

ताजा–ताजा वासमती की महक
हमारे आंगन में आ पसरेगी
चाव–चाव में दादी – माँ
पौत्रों के मुँह चूमेगी

शकुन भरी खबरें आने पर
सबका मुंह मीठा होगा
दर पे कोई तेल चोएगा

अखबारों के पन्नों पर
हत्याओं, पुलिस मुकाबिलों की रिक्तम रक्तिम सूली टंगी
खबर नहीं होगी

सांझ सवेरे
मैं उस पल की प्रतीक्षा में हूं
और उस पल की प्रतीक्षा में हूं

और उस पल का
रेखाचित्र रच रहा हूं

खामोश पल

''पकयुक्त तालाब को साफ–शफाफ झील में बदलने वाले
तुम ही हो, कोई और नहीं
तुम चाहो तो तालाब को झील में
और झील को तालाब में बदल सकते हो

छोटे बच्चे को अध्यापक के ये शब्दार्थ – समझ नहीं पड़ते
वह कुछ पूछने की हिम्मत भी नहीं करता
सिर्फ खामोश खड़ा खुली आंखो से स्तंभित हो, हैरानसा
अपने अध्यापक की ओर देखता रहता है....

अध्यापक या तो जरूरत से ज्यादा समझदार या फिर मूर्ख है
बच्चा मूलतः छोटा है, या फिर अपना उम्र से ज्यादा होशियार
अध्यापक बच्चे की खामोशी में छिपे प्रश्न को
या तो समझ जाता है
या फिर अपनी मूर्खता को छिपाने की कोशिश करता है
और पुनः पहली बात जोर देकर समझाता है, दोहराता है

उस समय बच्चा सिर्फ अपने गांव वाले
पंकित तालाब के बारे में सोच रहा होता है
और शायद यह भी कि जब बरसात होती है
तो यह पंक, बरसात के पानी में घुलकर
एक गंदे तालाब का रूप धारण कर लेता है

कई बार बरसात इतनी होती है
कि तालाब का पानी बह निकलता है
और इसका गंदा पानी उनके घरों में आ घुसता है

अध्यापक छोटे बच्चे को, तालाब को झील में –
परिवर्तित करने के बारे में समझाने पर जोर लगा रहा है
और बच्चा घरों में आ घुसे गंदे पानी के बारे में
सोच रहा है

और फिर एक ऐसा पल आता है
जब अध्यापक और बच्चा दोनों अताक खड़े हैं
समय बीत रहा है ...

अलग – अलग आँगन

रमेश कुमार
अनुवाद - फूलचन्द मानव

मैं जब कभी खिली रात के एकांत को
भोगने का, अनुभव करने का यत्न करता हूं
तो नारे, सुर्खियां, मांगे और बयान
मेरी खाली जेब के शून्य से निकल कर
मेरे पाये, सिरहाने आ जमा होते हैं
—अशांत नारे और एक चौमुखी शोर
और मुझे लगता है
कि तारकों की इस भीड़ में शस्त्रबद्ध हैं
और एकाएक सभी तारे
अलग–अलग आंगनों में विभाजित हो जाते हैं
हमारे आंगन के तारे
'मास्टरों के' आंगन के तारे
'डाक्टरों के' आंगन के तारे
और नत्थू के आंगन के तारे आस पास देखता है
चांद बेचारा चमत्कृत होकर
और इन टोलियों के जत्थेदार, सिपहसालार
करनैल और जरनैल सभी
तलवारें, त्रिशूल और भालों जैसे दांत निकालकर
एक दूसरे की पीठ को काटते हैं
किसी पौं पड़े कुत्ते की तरह
चारों ओर आग और नारे
और गांव के पेड़ सारे
सोच रहे हैं
कि कुंआ कहाँ खोदा जाये?

मेरी पराजय ही मेरी कविता

डा० एन० गोपी
अनुवाद : डॉ० विजयराघव रेड्डी

मेरी पराजय ही मेरी कविता
शब्द बनते कविता नहीं।
पेड़ से जमीन पर झड़ने वाले उन
पत्तों की सुदीर्घ मौन की भांति
सुनाई देती नहीं कविता भी।।

निष्प्राण हैं वाक्य सभी . . . .
आइने जैसे असत्य की भांति
निरर्थक आसमान–सा
सभी है सजीव शून्य . . . .

उपमान रूपी खूँटों पर टँगे
मैले कपड़े हैं कविताएँ।
उठ रही चिन्गारी बन जाती जैसे राख
अनुभवों की अभिव्यक्ति की छटपटाहट में
पराजित खून के निशान हैं कविताएं ।।

चाक पर घूमता पानी

शैलेश मटियानी

जबकि
आ चुका है सीमांत
सारी कल्पित अनन्तताओं को समेट लिया है
खुद की पोरों पर
काल की अदृश्य उँगलियों ने !
जब कि
स्वयं में ही अन्तर्लयित हो गई हैं –
दिशाएँ !
चारों ओर छाया है
बाढ़ में उफनती नदी की तरह उछालें मारता
महानगरों का प्राणलेवा कोलाहल –
जबकि खोदते में एकाएक ढह पड़ा है एक हिस्सा
पहाड़ !

तब भी क्यों
किसी निर्जन अरण्य के किसी वृक्ष की
किसी सघन टहनी पर मौजूद है
स्वयं को गा सकने की आकांक्षा
अभी भी !
जबकि
आँखें हो चुकी हैं लगभग सन्ध्याकाल –
तब भी क्यों
कहीं इंगित करता – सा दिखता है कोई –
कहो कुछ भी नहीं, मगर
श्रुति में रहो ----
शायद, सुनाई दे जाय इस सर्वग्रासी बवण्डर में भी

नहीं किसी रंध्र से प्रकट होता
शब्द !

जबकि
केंचुलों की तरह पीछे छूटते – छूटते
जाने कहाँ स्वयं में ही गुम हो गये हैं
रास्ते –
आँखों तक आते – आते सूख जा रही है
करूणा
और उदर से फूटकर प्राणों तक छा गई है
जठराग्नि !
जबकि
आक्षितिज व्याप्त होने की भ्रांति में कल्लोल करती संवेदना
हो गई है पठार !
जबकि
सारी कोमतलाओं को रौंद गया है कोई
पत्थरों का सौदागर !
तब भी क्यों
किसी अंधकूप में के कुम्भ – सा डोलता है
अंतर्घट – – –
अपनी ही गूँज में स्पंदित होता, अभी भी
जल के मिट्टी में इकट्ठा हो रहे होने का सा
शब्द बनाता हुआ
तब भी क्यों
मिट्टी के साथ – साथ घूम रहा है पानी
चाक पर?......

सुनो गौतम

हेमन्त कुमार द्विवेदी

नहीं सुन पाये तुम अगर
गूँजती हर खुदरा कोने में
सदा – ए – हिन्द
सुनो उसे तुम भी ओ गौतम
कसया में करवट लिये उनीदे से
तुम भी सुनो !
(१)

जलती दोपहरी जेठ क., नंगी
देह पर काली चमड़ी – मेड़ पर
जो खड़ा है अनदेखी जंजीर से जकड़ा
हिन्द

अपनी माँ के पेट से आजाद निक... था –
पसीने से चिपकती मूछें कभी नहीं रोता
हँसता भी नहीं
गैर जानिबदार है किसान !
पूस की रात में पानी के वक्त
आषाढ़ में ज्वार बोते वक्त
महंगी खाद,
ब्याज चुकाते – फसल बेचते
शादी करते – ताड़ी पीते वक्त
कभी नहीं रोता
हँसता भी नहीं
बीड़ी पीता है गेरूए दाँतों, से बस गैर जानिबदार है किसान !

इसके बीवी – बच्चे गरीब हैं
नहीं जानते क–ख–ग, अलिख–बे,ए–
बी–सी–डी
आँखों में पसरा घूसर सन्नाटा
बगलों में दबाए अंधेरे भरोसे
रोटी – मिर्च – प्याज चटनी

कपड़े जैसे आन्ध्रा के समन्दरी किनारे
ये भी नहीं रोते
हँसते भी नहीं
गैर जानिबदार हैं सब लोग !
एक शाम आठेक बजे के बाद
आषाढ़ की पुर्वायी तौंस में लेटे
ऐन गाँव के बीचो बीच
सरपंच के घर की ओर से आती
चीख सुनी मैंने
किसी कत्ल की, क्या तुमने नही सुनी !
(२)

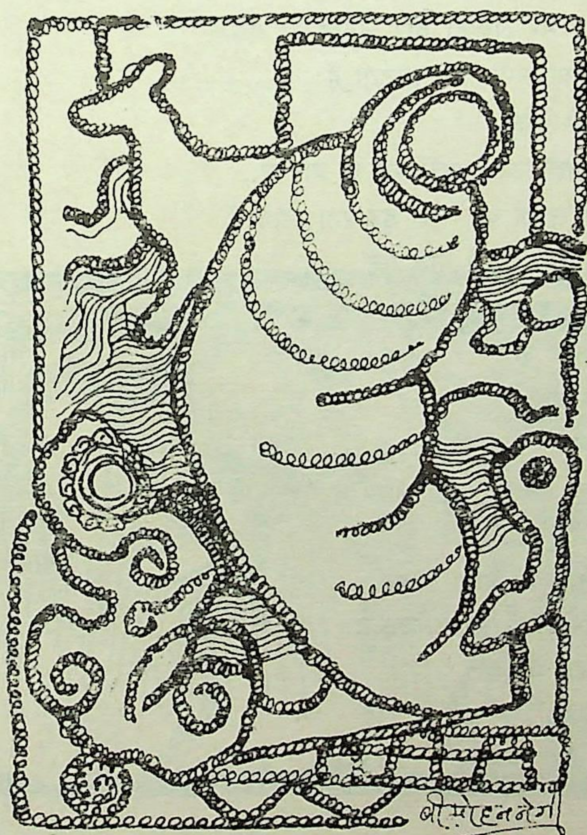
सुनो गौतम !
क्या तुम्हें मालूम है, कुशीनगर में
बन चुका तुम्हारा
शानदार मन्दिर
और पिछले कई सालों से
देवव्रत उगते यहाँ
कैक्टस जैसे
अब बहुत मुश्किल है कोई माया
फिर किसी सिद्धार्थ को जन्म दे सके!
हाँ मैं बे उम्मीदी से चिल्ला रहा हूँ
सुनो गौतम !
हिन्द एक बन्द कमरा है अब
इसमें सड़ांध आती है
एक खिड़की खुली थी, जबरन
जिसे १६४८ में बंद कर दिया गया
तब से यहाँ अँधेरा है
सपेरे आते हैं
बीन बजाकर साँप खिलाते हैं
शाम को लौट जाते हैं
रात की उनकी पिटारी से निकलकर
साँप
घूमते हैं हर गली, मकान, दुकानों पर
जवान लड़कियों की सुनहरी आँखों पर
कमजोर जिस्म की जांघों पर
अंग्रेजी झाड़ते साहबों की नाकों पर
मास्साब की बगलों पर
किसान की छाती पर

स्टूडेंट के हाथों पर
तमिलनाडु की भाषा पर
झारखंड के कोयले पर
पंजाब की सड़कों पर
कश्मीरी वादियों में
सिक्योरिटी कौंसिल के पैगाम–ए–अमन पर
और भोर–तड़के फिर रंग जाते है पिटारी में !
सुनो गौतम !
जातक कथाएँ अगर सही है
तो आज भी तुम जिन्दा हो
अगर हिन्दुस्तान में कहीं पर हो तो सुनो
मैं सिर्फ जोर से चिल्लाना चाहता हूँ
मैं चाहता हूं –
यह सरकती – टकराती – फुसफुसाती भीड
सिमटकर बन जाये एक दानवाकार
बड़ा आदमी!
मैं हर्फ़ से हर्फ़ बजा देना चाहता हूँ
ताकि हर एक हर्फ़ का कोई सही मतलब हो
हाँ, मैं गजल लिखना नहीं चाहता
सिर्फ जोर से चिल्लाना चाहता हू –
मैं चाहता हू सावन के झूले
गाँव के मासल जिस्म पर झूलें
मैं चाहता हू हर आँख – हर्फ पढ सके
हर एक हर्फ़ की आवाज हो
आवाज़ की इक शक्ल !

सुनो गौतम !
टाइयां, अगर थोड़ी ढीली कस जाती
परिन्दों, की बोली मिठा जाती, कलफ अगर कहीं सस्ता हो जाता
हिन्दुस्तान में बारिश हो जाती।
मैं कलफ, टाई, देवव्रत के खिलाफ
नहीं गौतम
उस साँप के खिलाफ हूँ
जो कलफ में घुला, टाई पर लिपटा
देवव्रत के भीतर है
जहाँ चुप मानी सेरन्डर
बोलनें का मतलब बदतमीजी है
हाँ, मैं इसी बदतमीजी के खिलाफ हूँ।
(३)

सुनो गौतम !
अब किताबों में तुम्हारी तस्वीर नहीं
पैगाम–ए–मुहब्बत मिलते हैं,
दोस्ते–फुल्के में झगड़ा हो गया है,
मजमाते रोती है,
राहगीर पर
उलीच दिया है किसी ने
स्वीमिंग – पुल का बासी पानी,
कच्ची सड़क पर एक
आदमी बन गया मुर्गा
और दरोगाजी की खिचड़ी मूछों का रंग
स्याह हो गया है,
इधर माधुरी "चोली के पीछे" नाच रही
है
उधर हुक्का चीखता है –
हाँ
गौतम !
अब मैं एक सुलगता हुक्का हूं
जोर से गुड़गुड़ाना चाहता है जो !
गौतम !
मैं जानना चाहता हूँ
दुनियाबी अच्छाइयों का शिद्दत से
दावा करने वाले
हिन्दुस्तान में अब सस्तापन, छिछोरापन
निकम्मापन
और बेवकूफ बनाने की आदत
किधर से आ गयी –
मैं इसी दोगलेपन के खिलाफ हूँ
जो अब [illegible]ह–ए–हिन्द पर
काबिज होना चाहता है !
कीमतों में इतनी भयानक गिरावट
और [illegible]स्तापन मैंने किसी नये आजाद
मुल्क में नहीं देखा
जहाँ हरेक हर्फ का मतलब
डिक्शनरी के मतलब से जूझ रहा हो
और समाज के सारे वर्गों व अ[illegible]स जनता
ने इससे मुंह [illegible] लिया !
(४)

गौतम !
धरती के मलबे में गडी हुई अन्दरूनी
मुखालफत को नंगा करना चाहता हूँ मैं
इन्हें नहलाओ
बदबू करती है ये
मैं जानना चाहता हूँ –
इस मलबे का मालिक कौन है
औश्र क्यों नज़्म
आम आदमी से दूर हो गयी !
हां,
आज मैं सिर्फ
जोर से चिल्लाना चाहता हूँ
लगातार !



१–पहाड़ी परियाँ

चम्पा वैद

अटूट सुन्दरता मे लिपटा यह पहाड़
कच्चा
टूटता गिरता
खड़ा है
पहाड़ी स्त्रियां मैले कपड़ों में
बर्फ सी उजली
दिन भर लकडी चारा बटोर
सन्ध्या समय घर लौटती हैं
थकी थकी
सोचती उस शहरी बूढ़े के बारे में
जो सूरज की तरह डूब रहा होता है
हर शाम उसी मोड़ पर
उन्हें देखने के लिए
जानने की,
कि वह
जूने में भी ठंडा
क्यों रहता है जब लोगों में पूरी गर्मी होती है
और जाड़ों में
जम क्यों जाता है वह
जब लोगों की गतिशीलता
चरम में होती

चितकबरी रोशनी

रोशनी आती है
मुझसे बतियाने
फिर गायब हो जाती है
चितकबरा करती
शेर की खाल की तरह
चली जाती है
घुप्प गुफ़ा में
महादेव के पास
उस सूखे पर्वत पर



कविता-तीन

बूढ़ी लड़की और नदी

'दिवाकर'

डेल्टा के किनारे बैठी
बूढ़ी लड़की
देखती है समुद्र को
नदी का अस्तित्व लीलते हुए
अट्टहास करते हुए समुद्र को
लड़की देखती है।
कितना साम्य है
नदी और उसके जीवन में
लड़की सोचती है
जिन्दगी का सफर
मां की गोद से उठकर
शुरू किया था जब उसने
तब कितना प्रवाह था उसमें
नदी की ही तरह
पहाड़ से उतरते हुए
पेड़, पत्थर, चट्टान
सब कुछ तोड़ सकती थी वह
अपना रास्ता तय करने के लिए
लड़की सोचती है
कितना रीत गया जीवन
नदी की ही तरह
दूसरों की जिन्दगी ढोते–ढाते
नदी, नदी नहीं रही
लड़की, लड़की नहीं रही
लड़की देखती है, कि
ठीक उसी की तरह
अपने में लौटने के लिए
नदी भी छटपटा रही है
समुद्र की गिरफ्त से छूटने के लिए।

कहानी

लछिया

-दिवा

बच्चे फिर पंतग उड़ाने लगे हैं, लछिया चाय के जूठे गिलास हाथ में पकड़े हुए उडती पंतगों को देख रहा है।

'वो गई...... गइ.......गई........वो.......कट गई...... ।' लड़के चिल्ला रहे हैं, लछिया भी चिल्ला कर आगे बढ़ता है कि पाँव में ठोकर लगती है, गिरता हैं काँच के गिलास टुकड़े–टुकड़े होकर बिखर जाते हैं। लछिया के पैर से खून निकलता है, लेकिन वह उसकी ओर ध्यान दे इसके पहले ही एक घूँसा उसकी पीठ पर पड़ जाता है और कानों में चोट जैसी सुनाई पड़ती है– 'खेलते ही रहना था तो क्यों आया नौकरी करने? जा, निकल यहाँ से।'

लछिया दुकान के अन्दर सरक जाता है। गोबरधन बोलता ही रहता है– 'रोज यही हाल रहता है इसका, यहां गाहक बैठा राह देख रहा है और इसे पंतग के साथ आकश में उड़ने की हो रही है। ऐसे चलता है होटल? ग्राहक चला नहीं जाएगा वापस?......

लछिया अन्दर जाकर काँपते हाथों से गिलास में चाय उंडेलने लगा तो चाय नीचे गिर गई। घबराकर केतली नीचे रखने लगा तो वह हाथ से छूटकर नीचे गिर गई और खौलती हुइ गर्म चाय फर्श पर बिखर गई। लछिया का पाँव जल उठा। वह कभी गिलास पकड़ने की कोशिश करता, कभी केतली और कभी पाँव की जलन को फू–फू कर शान्त करने की कोशिश करने लगा। उसी समय गोबरधन ने उसकी गालों पर चार चाँटे जड़ दिये। पैर जलने की पीड़ा के कारण आँख से निकले आँसुओं की बूंदे चाँटों के निशानों को धोने लगीं।

लछिया कनस्तर लेकर पानी भरने चल दिया। लड़के अभी भी पंतग उड़ा रहे थे। वह फिर पंतगों को देखने लगा और पंतग के साथ खुद भी आकाश में उड़ने लगा। लछिया उड़ते–उड़ते पहाड़ों को पार करता जा रहा है। एक–दो–तीन–चार पहाड़, फिर पहाड़, पहाड़ के नीचे एक और पहाड़। इन सबके पीछे सबसे आखीर में क्या आता होगा? क्या ये पहाड़ कभी ख़त्म भी होंगे? लछिया के गाँव को कितने पहाड़ों ने मिलकर छिपा रखा है?

कौन सा गाँव? लछिया का तो कोई घर ही नहीं है। कहाँ जाएगा वह? उसके बाप का गाँव धाकुड़ी में है और मामा का गाँव कपकोट में। धाकुड़ी का जंगल बहुत सुन्दर था। लछिया को कई बार उस जंगल के बड़े–बड़े हरे पेड़ों के पीछे का नीला आसमान और सफेद हिमालय याद आ जाते हैं और उन जंगलों के सीढ़ीदार और ढलवां हरे–हरे खेतों में लुढकने की इच्छा हो जाती है। कई बार सोचता है कि वहाँ जाएगा तो किसी ऊँचे देवदार पर चढ़कर जोर–जोर से चाँचरी गायेगा और अपनी आवाज आकाश से भी ऊपर तक पहुँचाएगा। लेकिन पहले

लछिया को धाकुड़ी में अच्छा नही लगता था, क्योंकि वहाँ के सब लोग उसे 'लाटे का छ्योड़ा' कहकर दुत्कारा करते थे। लछिया का बाप बोल नहीं पाता था,इसलिए सब उसे 'लाटा' कहकर पुकारते थे। वह लछिया को खूब प्यार करता था, इतना ज्यादा, कि लछिया उस प्यार को सह नही पाता था। प्यार के मारे लाटा हर बात पर अड जाता था। खाने को देता तो सारा का सारा जबरदस्ती खाना पड़ता था। जो बात न मानो उसी पर बिगड़ पडता और मारने लगता था। उसकी मार से बचने को अक्सर वह पडौसियों को पुकारता था।

कपकोट जाने की इच्छा उसे खूब होती थी, क्योंकि वहाँ उसके बहुत से दोस्त थे। उसे अपने साथ गुल्ली-डंडा और अड्डू खेलने बुलाया करते थे। उन्हीं के साथ वह स्कूल भी जाने लगा था। कई बार फेल होकर भी लछिया कक्षा दो तक पहुँच ही गया था। कपकोट मे उसे 'लाटे का छ्योड़ा' कोई नहीं कहता था इसलिए भी लछिया को वहाँ अच्छा लगता था। सिर्फ कभी-कभी मामी उसे इस नाम से पुकारती थी। तब वह सोचता था कि बड़ा होकर मामी से जरूर बदला लेगा। उसे माँ की बिल्कुल भी याद नहीं थी, लेकिन जब भी मामी सताती, लछिया अपनी माँ को याद करने लगता और सोचता यदि माँ होती, तो उसे मामी के घर नहीं रहना पड़ता। वह अपने ही गाँव में रहता, वहाँ के जंगलों में भेड़-बकरियां चराता, बिणई बजाता और जोर-जोर से गाना गाता। तब उसे स्कूल भी नहीं जाना पड़ता। वहाँ गाँव में स्कूल था ही नही। तीन मील दूर जो स्कूल था, उसमें मास्टर कभी आता ही नहीं था। मामा के यहाँ घर के सामने ही स्कूल है। लछिया को पढ़ना अच्छा नहीं लगता था, फिर भी मामा उसे जबरदस्ती पढने भेजता था। खेलने का समय ही नहीं मिलता था। घर में खेलने लगता तो मामी पढाई का नाम लेकर उसे घर के अन्दर बिठा देती और किताब लेकर बैठता तो कोई न कोई काम बता देती।

लछिया को पटाखे जलाने का भी बहुत शौक था, परन्तु उसके पास कभी पटाखे नहीं होते थे। पिछली दीवाली में उसने डरते-डरते मामा से कहा तो वे दो-चार पटांखे लाये थे। उनहें दखकर लछिया को लगा मानो उसके हाथ में आसमान के तारे आ गये हैं। वह एक-एक पटाखे को सहला-सहला कर देखने ा। उसे पटाखे मिल जाने की इतनी खुशी थी कि उन्हें जलाने की कोई जल्दी · रही। उसने वे सभाल कर रख दिये। उसी समय मामी आ गई। मामी ने उसे इतनी जोर से झिड़का कि उसे लगा जैसे जलता हुआ बम उसी के हाथ में फट गया हो।

'घर मे खाने को दाना नहीं, और मामा-भान्जे की ये रंगरेलियाँ हो रही हैं! जलाने के लिए मेरे घर में कोई पैसे नहीं हैं।' ऐसा कहते हुए मामी ने पटाखे छीन लिये। मामा चुपचाप बाहर जाकर बीडी पीने लगा। लछिया 'टें टें करके रोने लगा। उसकी 'टें' सुनकर मामी ने उसे एक जोरदार तमाचा मार दिया। तबसे लछिया ने मामा से न कभी पटाखे मांगे न पतंग। गुल्ली-डंडा तो वह खुद ही बना लेता था। साथ के बच्चे जब पटाखे जलाते तब वह टुकुर-टुकुर उन्हें देखा रहता और

में जले–अधजले पटाखों को टटोल–टटोल कर जमा करता तथा फिर से जलाने की कोशिश करता। इसी तरह वह बीड़ी के टुकड़े भी बटोरने लगा था। जब घर में कोई नहीं होता तब वह चूल्हे की लकड़ी से बीड़ी के अधजले टुकड़ों को सुलगाकर खूब मजे से पीता था। कभी–कभी मामा की एक आध बीडी चुरा भी लेता था। चुराते समय उसे डर भी लगती, लेकिन बीड़ी पीते समय उसे लगता कि अब वह बड़ा हो गया है। जल्दी ही इतना बड़ा हो जाएगा, कि मामी को डरा–धमका सकेगा। मामा इतने बड़े होकर भी मामी से क्यों डरते होंगे? जब मामी घर में नहीं होती तब 'बेटा–बेटा' करके प्यार से बात करते हैं खाने की चीजें भी देते हैं। मामी सामने होती है तो हमेशा डाँटकर ही बात करते हैं, यह बात लछिया को बहुत खराब लगती थी। मामी भी पहले इतनी खराब नहीं थे। वह उसे अपने साथ सुलाती, और अच्छी–अच्छी चीजें खिलाती थी। मगर जबसे भैया हुआ, तबसे मामी बदल गई। भैया लछिया को बहुत अच्छा लगता था। उसके छोटे–छोटे मुलायम से हाथ–पैर बहुत सुन्दर लगते थे। सबसे बड़ी खुशी तो इस बात से थी कि लछिया अब दद्दा बन गया था। भैया उसे 'दद्दा' कहकर पुकारे‍ उसके साथ खेलेगा, उसकी हर बात मानेगा। वह भी भैय्या को सारी बातें सिखाएगा। हमेशा अपने साथ रखेगा। लछिया को समझ में नहीं आता था कि मामी उसे भैय्या को गोद में क्यों नहीं लेने देती।

धीरे–धीरे मामी सभी अच्छी चीजें लछिया से छिपाने लगी, और उसे हमेशा 'नाटे का छोरा' कहने लगी। अब वह अक्सर लोगों को लछिया के बाप की अटपटी बातें बताती और खूब हँसती। उसकी बातें सुनकर और लोग भी लछिया की हँसी उड़ाते। मामी मामा से कहकर लछिया को उसके गाँव वापस भी नहीं भेजती थी। लछिया जानता था कि यदि वह चला जाएगा तो मामी को घास काटने, जंगल से लकड़ी लाने और नदी से पानी लाने के काम खुद ही करने पड़ेंगे। बरतन भी खुद ही मलने पड़ेंगे। अभी तो स्कूल से लौटने के बाद लछिया ही जूठे बरतन भी मलता था। उसे खेलने का समय नहीं मिलता था। इसलिए वह स्कूल से लौटते समय रास्ते में ही खेल लेता था। कई बार वह और उसके साथी घर से बस्ता लेकर जाते और पूरे दिन रास्ते में ही खेलते रहते। शाम को छुट्टी के बाद ही लौटते बच्चों के साथ खुद भी ऐसे आते जैसे दिन भर स्कूल में पढ़ते रहे हों। ऐसे छिप–छिप कर खेलने में थोड़ा डर तो लगता था, लेकिन खुशी भी होती थी कि उन्होंने बड़ी बहादुरी कर दी है। ऐसी खुशी उन्हें न घर में मिलती थी, न ही स्कूल में। स्कूल में मास्टर उसे खड़ा करके सवाल पूछता था और सवालों के जवाब वह नहीं दे पाता था। तब मास्टर बेंत मारता था और लछिया पाठ याद करने के बदले मन ही मन बड़बड़ाता था– 'मां' से मामी, 'मां' से मास्टर, 'मां' से मार.........।'

मार खाने की उसे आदत हो चुकी थी। मार खाते समय वह रोने लगता, बाद में फिर वही करता, जो उसका मन कहता। इसलिए मामी ने एक नयी तरकीब ढूंढ निकाली। जब भी लछिया स्कूल से देर में आता या कोई और गफलत करता, वह उसका खाना बंद कर देती। भूख से बेचैन होने पर लछिया कान पकड़कर

कसम खाता कि अब से कभी ऐसा नहीं करेगा। लेकिन जल्दी ही फिर कोई न कोई गलती कर ही बैठता। एक दिन जब मामी पानी भरने धारे की ओर गई तो भूख से बेचैन लछिया रसोईघर के बरतनों को खोल-खोलकर देखने लगा। एक डिब्बे के अन्दर उसे रात की बासी रोटी मिली। रोटी सूखी थी, कैसे खाता? उसने सन्दूक टटोलकर गुड़ ढूंढ निकाला। उसमें से एक बड़ा सा टुकडा तोड़कर बाहर निकल गया। मकान के पीछे की नाली में छिपकर गुड़ के साथ पूरी रोटी खा ली। गुड़ उसे बहुत अच्छा लगता था। जब भी मौका लगता, थोड़ा-थोडा निकाल लेता था। उसका बस चलता तो वह एक भेली गुड एक ही दिन में खा लेता।

उस दिन लछिया की गुड़-चोरी पकडी गई थी। मामी आस-पास के सब लोगों को बढ़ा-चढ़ाकर उसकी कुकर्म-कथा सुना रही थी। लछिया के घर में घुसते ही वह मामा से कहने लगी- "और करो लाड़ अपने चोर भान्जे का। अभी से ये हाल हैं, बड़ा होकर न जाने क्या-क्या चुरा ले जाएगा। ऐसे डाकू को अब मैं एक दिन भी अपने साथ नहीं रख सकती। देखे क्या हो? कुछ कहते क्यों नहीं?"

मामा एकदम से उठकर लछिया की ओर आया। लछिया मामी से डरकर मामा से चिपकने लगा। उसे लग रहा था कि मामी की मार से उसे मामा ही बचा सकता है, लेकिन मामा ने उसे झटक दिया और कुछ देर तक तड़ातड मारता रहा फिर वहाँ से चला गया। उस दिन लछिया बहुत रोया। उसके रोने पर मामी और अधिक डॉटती, तथा डॉट सुनकर वह और भी जोर से रोता। काफी देर तक रोते रहने पर वह थक गया और वहीं मिट्टी के फर्श पर सो गया। उसे न किसी ने मनाया न उठाया।

उस दिन से लछिया गुमसुम हो गया था। वह रोता भी नहीं था और खेलता भी नहीं था। उसके मन में हर समय एक ही विचार चलता रहता था कि यहां से भागा कैसे जाय? वह अपने दुःख की बात किससे कहेगा। उसकी मदद कौन करेगा? वह मामा अपना था, अब वह भी पत्थर के कलेजे वाला हो गया। बाप तो न बोल सकता है, न सुन सकता है। माँ कहाँ गई होगी? और तो सबकी माँ उनके साथ रहती है, मेरी ही माँ क्यों चली गई होगी? माँ होती, तो मेरा भी घर होता, अपना घर। वहाँ सब कुछ खाने की और खेलने की छूट होती, वहाँ कोई मारने वाला न होता।

ऐसा सोचते-सोचते एक दिन वह सुबह कनस्तर लेकर नदी की ओर गया। कनस्तर नदी के किनारे रखकर दौड़कर गाड़ी की सड़क में चला गया। वहाँ बागेश्वर की ओर जाने वाली बस खड़ी थी, लछिया उसमें बैठ गया। बस चल पड़ी और लछिया सोचने लगा- 'मामा-मामी तो अभी सोये ही होंगे। उनके उठकर नदी पर आने तक तो मैं कहीं......' पहुँच जाऊँगा। नदी पर कनिस्टर देखकर सोचेंगे लछिया नदी में बह गया। अच्छा ही हुआ, फिर ढूंढने भी नहीं आएंगे। मामा को बुरा लगेगा? एकाएक लछिया की छाती में अजीब सा होने लगा। उसकी आँखों में आँसू भर आये।

उसी समय कंडक्टर ने उससे टिकट के पैसे माँगे। उसके पास पैसे नहीं थे, इसलिए डाँट कर नीचे उतार दिया। कई मील पैदल चलकर लछिया बागेश्वर पहुँचा। भटक–भटक कर एक होटल वाले के यहाँ बरतन धोने लगा। बदले में खाना और सोने की जगह मिल गई। लेकिन लछिया को डर लगी रहती थी कि कपकोट में लोग यहाँ आते रहते हैं, किसी दिन जरूर मामा को पता चल जाएगा और वह उसे ले जाने को जाएगा, इसलिए फिर एक दिन गाड़ी में बैठकर वह अल्मोड़ा पहुँचा, वहाँ से भवाली पहुँचकर गोबरधन के होटल में काम करने लगा। यहाँ ढेर सारी गाड़ियाँ आती हैं। किसम–किसम के आदमी दिखते हैं, फिर भी लछिया को बार–बार अपने मुलुक में जाने की इच्छा होती हैं। यहाँ वह बहुत अकेला है।

'अब तो मैं बारह साल का हो गया हूँ' लछिया सोच रहा था,– अब मैं कहीं भी जा सकता हूँ। किसी भी गाड़ी में बैठकर दिल्ली तक भी जा सकता हूँ, लेकिन वहाँ कहाँ रहूँगा? क्या खाऊँगा? सभी गोबरधन की तरह मारेंगे। लछिया को अब नयी जगह और नये लोगों से अधिक डर लगने लगा था, इसलिए वह सोचने लगा– 'मैं अपने गाँव जाकर भेड़–बकरियाँ चराऊँगा, ऊन कातूंगा, ऊन के स्वेटर–कम्बल–दन बनाकर बेचूंगा। या खच्चर पाल लूंगा। पिंडारी जाने वाले दूर–दूर के लोगों का सामान मारूँगा। कभी कोई बम्बई–दिल्ली का अच्छा बाबू साहब मिल जाएगा तो उससे कहकर उसके साथ भी तो जा सकता हूँ। यहाँ इन पहाड़ों में रखा भी क्या है? यदि इन सब पहाड़ों को काट–काट कर एक खूब चौड़ा खेत बना देंगे तब भी जैसे घर और सब लड़कों को होते हैं, वैसा घर मेरा कभी नहीं हो सकता। इन पहाडों को तोड़ना भी मुझसे नहीं हो पाएगा। क्यों न मैं ही सबसे ऊँचे पहाड़ पर चढ़ जाऊँ? फिर तो इन सबकी पतंगे खुद मुझे छूने आएंगी।

लछिया का ध्यान पतगों की ओर चला गया। चार–पाँच पतंगें आकाश में उड़ रहीं थीं। लछिया सबसे ऊँची पतंग की डोरी छीन कर दौड़ने लगा।

'पकडों........पकड़ो...... मारो.......' लड़के लछिया के पीछे दौड़ने लगे। लछिया अपना पूरा दम लगाकर भाग रहा था। आगे पहुँचकर उसने देखा कि पतंग नीचे आ गई है और लड़के भी उसके नजदीक पहुँच रहे हैं। उसने फुर्ती से डोरी खींची, पतंग पकड़ी और उसे फाड़ कर उसकी चिन्दियाँ लड़कों की तरफ उड़ा दीं। लड़के उसे पकड़ने दौड़े। वह फिर भागने लगा। भागता रहा, भागता रहा। लेकिन अब वह बस्ती की ओर नहीं भाग रहा था, बल्कि जंगल की ओर भाग रहा था। जंगल पार कर वह पहाड़ पर चढ़ेगा फिर नीचे उतरेगा, फिर अगले पहाड़ पर चढ़ेगा, फिर उतरेगा। ऐसा करते–करते किसी दिन वह जरूर अपने घर पहुँच जाएगा।

सुल्तान अहमद

कहाँ को जायेगा वो काफ़ला? नहीं मालूम
किसी को जिसमें सही रास्ता नहीं मालूम।

जिसे खुद अपने ही घर का पता नहीं मालूम
उसे भी है ये गुमाँ, मुझको क्या नंहीं मालूम?

यहां किसी को हमारी ख़ता नहीं मालूम,
मिली है फिर भी हमें क्यों सज़ा? नहीं मालूम

वो खौफ़नाक नज़ारों से डरके यूं भागा,
कहाँ से चलके कहां आ गया? नहीं मालूम

झुलस रहे हैं सभी जिनसे उन सवालों पर
लिया है आपने क्या फैसला? नहीं मालूम

'दो ग़ज़लें'

'सरवर' लखनवी

एक

क्या हो गया है आज का इन्सान देखिये
ज़ाहिद ज़बा से दिल से है शैतान देखिये

जाये तो मिल हर एक को मंजिल हयात की
मज़हब को छोड़के अगर ईमान देखिये

पूजा नमाज़ सजदे तो करते हैं रात दिन
इन्सान बन गया है पर हैवान देखिये

हर एक दुआयें करता है जन्नत के वास्ते
इन्सान की हवा का ये इम्कान देखिये

बदलेगा एक रोज़ यह नज़्में चमन जरूर
दुनिया कहेगी तब ये है इन्सान देखिये

नासेह से छेड़--छाड़ का अन्जाम यह हुआ
''सरवर'' ने खुद भी खो दिया ईमान देखिये

दो -

जिसको बनाया खुद उसे भगवान क्या कहें
करने को हम दुआओं को ईमान क्या कहें

इन्सान सिर्फ इन्सां रहेगा कहीं भी हो
हिन्दू ईसाई और मुसलमान क्या कहें

गम को समझना औरों के सीधी सी बात है
इतनी सी बात गीताओं – कुरआन क्या कहें

कुछ भी नहीं है जो हमें उसकी तलाश है
फिर हम किसी भी चीज़ को भगवान क्या कहें

"सरवर" की ग़ज़लें सुनके ये नासेह ने कह दिया
लगता तो है मगर इसे शैतान क्या कहें

खेतों खलिहानों की आँखें

यश मालवीय

खडी फसल को कौए ताकें
तपती गिद्ध दुपहरी
चील–झपट्टों से डरती है
घर की सूनी देहरी

धूप पसीना छोड़ रही है,
चील कि अंडे छोड़े
तर होता सूरज का माथा
किरनें फोडे फोड़े

चारों तरफचिलचिलाती है
हर उम्मीद सुनहरी

महज मुहर हो गया आदमी
यहां – वहां है लगता
सुविधाओं पर करे दस्तख़त
अपने को ही ठगता

भूखे चेहरे, प्यासी फाइल
दिखे हथेली गहरी

खेतों खलिहानों की आँखें
पछवातों में खुलतीं
कोर्ट - कचहरी में काली,
छायाएँ हिलतीं – डुलतीं

पगडंडी से क्रीज़ संभाले
गुज़रे बाबू शहरी

जूठी रोटी

पारस दासोत

''मैं घर कौन–सा मुँह लेकर जाऊँ!...
आज भी काम नहीं मिला..
रत्ती भर आटा खरीदने के लिये मेरे पास पैसे नहीं हैं
माँ ने रोटी ....! बबलू भूखा होगा!.......''
सोचते – सोचते, वह अपने घर पहुंच गया

●

''बेटा ! आ गया! जा, डिब्बे में एक रोटी रखी है, खा ले!....
बेटा, एक ही रोटी बनी, आटा नहीं था!...
बबलू सो गया, तू खा ले!''
रोटी खाने,.. उसने जब डिब्बा खोला...
देखा – 'रोटी किसी ने जूठी कर दी है.'
रोटी पर दाँतों के निशान देख,.. वह बबलू के पास जा लेटा
वह अभी लेटा ही था, बबलू ने उससे धीमे स्वर में पूछा –
''दादा, कल राजू की माँ कह रही थी – जूठी रोटी नहीं खाते.'
दादा, दादा क्या सच में जूठी रोटी नहीं खाते?''

●

श्रद्धांजलि

संभावनाशील कवि स्वर्गीय हेमन्त

आधारशिला के सहयोगी व संभावनाशील युवा कवि हेमन्त कुमार पाण्डे का २१ वर्ष की अल्पायु में विगत दिनों मस्तिष्काघात से मृत्यु हो गयी। अपने भाई बहिनों में सबसे बड़े हेमन्त की मृत्यु उसके परिवार के लिए जितनी असहय पीड़ा रही। उतनी ही उससे जुड़े रचनाकर्मियों व उसके संवेदनशील दोस्तों की भी।

हेमन्त आज के समय में बिरलों में एक होनहार, संवेदनशील व सच्चाई की खोज में समय से साक्षात्कार कर रहा युवक था। बचपन से वह विवेकानन्द से प्रभावित था और रामकृष्ण मिशन से जुड़ा था। एक दिन काम की तालश करता हुआ वह मुझसे मिला। उससे पहली बातचीत में ही लगा कि आज के समय में भी उस जैसे समाज के लिए चिन्तित विचारवान व सत्य को खोजने की ललक वाले युवक भी हैं। वह समय के यथार्थ को अपनी कविताओं के माध्यम से स्वर देने की कोशिश में लगा एक युवक था। जिसे इस समाज की जरूरत जानते हुए ही आधारशिला से जोड़ा। लेकिन समय से पूर्व ही वह इस संसार से चल दिया। उसे श्रद्धांजलि, स्वरूप ही इन पंक्तियों के साथ उसकी कुछ कविताएं भी दी जा रही है। एक होनहार रचनाकर के साथ–साथ एक सच्चे इंसान को 'आधारशिला' की श्रद्धांजलि जो जिन्दा रहता तो समाज के लिए उल्लेखनीय कार्य करता।

सम्पादक

हेमन्त की दो कविताएं -

सपना

मामूली धूलकण ही सही मैं,
पर, कुम्हार के सधे हाथों में जाकर,
देवमूर्ति का हिस्सा बनने का सपना देखा मैंने,
तुच्छ जल बिन्दु ही सही मे
पर, नभजयी मेघों से मिलकर
प्यास धरा की बुझाने का सपना देखा मैंने
हीन प्रस्तर खण्ड ही सही मेंख
पर भाग्य के फेर में पड़कर
ताजमहल में चिन जाने का सपना देखा मैंने
कृशकाय घास का तृण ही सही में
पर, कचरैया की मेहनत से जुड़कर
किसी का आसरा बनने का सपना देखा मैंने

मूर्तियां

हेमन्त पाण्डे

मूर्तियां/मत बनाओ,
कल तुम ही
इन मूर्तियों को खंडित करोगे
पर तुम्हारा स्वभाव ही ऐसा है
कि हर पल,
नयी मूर्तियां गढ़ोगे
मन के अन्दर भी
और नगर के चौराहों पर भीष्व
राम, कृष्ण, ईसा, गाधी, मार्क्स,
और साथ ही अपने परिचितों की भी।
नदी – तट पर बालू के स्तूप बनाते
बच्चों की तरह
तुम स्वयं ही
अपने बनायी मूर्तियों को तोड़ देते हो
और कहते हो
मैं तो उसे अच्छा समझता था,
या फिर
..... उसमें अच्छाइयां भी थीं!
और प्रसन्न हो जाते हो
अपने ही निर्माण और ध्वंस पर
चौराहों से लेकर
संसद तक बनी मूर्तियों की,
उपयोगिता क्या है?
उन मूर्तियों से
तुम कितनों को,
कब तक ठग सकते हो
कल जब सत्ता तुम्हारे विरोधियों के पास होगी

तब ये मूर्तियां
कहीं खंडित पड़ी होंगीं
और तुम्हारे विरोधी
नई मूर्तियां गढ़ रहे होंगे
मूर्तियां गढ़ने का यह खेल
बहुत पुराना है
लेकिन अब इसे बन्द करो
अपने मन,
देश की सड़कों में,
कुछ दूसरी चीजों के लिए भी



कुमाऊँनी कविता–एक

घात

डॉ०डी०एस० पोखरिया

ओ हिमाला! भौत गैली नींन में छै?
त्वे जगूनी भारतै का लाल
भारतै को भाल त्वी छै।
पूत तेरा उच्च स्वर में घात लानी –
कुंभकर्णकि नींन टुटि गै. रावणै का जगायाँ ले.
काँ टोली बेरि बैठियूँ छै. भोट में छै चीन में छै?
फिरि लड़न. छू ये नयाँ दुश्मण हुँ त्वीलै
पुजि गई त्यार देलि में ई
घूस. दैजा. सुर. शाराबाक लाग पन्यारा
सिल में पिसि–पिसि रगड़ि दे तू. शत्रु न्यारा।
अनय – अत्याचारि को तू बणै दे मस्यूटो शिबजी लिजी.
जै चुपड़ि बै. रूद्रबणि बै नाचि उठूँन शिवजी
दुश्मणों की तू करी दे – ग्यूँ चुटाई. भट मुटाइं
फिरि लड़न छू एक नैं दस–दस दगड़ि
पैग त्वी छै. माल त्वी छै. भारतै को भाल त्वी छै।
यो नयाँ दुश्मण तो तेरा भितरिया छन
आपणै छन,
विषमता का. ज्योड़ में यो बाबिल जैसा
बेड़िया छन. अटीयाँ छन
फिरि करण छू त्वील इनरो जड़–उपाड़
बी उजाड़
नयाँ नाच की. नयँ ऋतुन की
बादलन की चाल ली छै. भारतै को भा त्वी छै।

कुमाऊँनी कविता-दो

मुबारक हो नँई चाल

बालम सिंह जनौटी

सरकालैल शिक्षा में करि दे कमाल।
देश आब दुनीं में नाम कमाल।।

नानतिन झिटधड़ि इस्कूल जै आल।
झवालन में घर हूं पिसूं भरि ल्याल।।

पाटि दवात ही खालि बबाल।
आब एक थाई और लोटियौ सवाल।।

किताबन उज्यासी आब को चाल।
मास्टर ज्यू इस्कूल में भात पकाल।।

मास्टरनी ज्यू हॉजरी हिसाब लगाल।
एक दिन इस्कूल में नेताज्यू आल।।

भात बाँटण बखत फोट खिंचाल।
नई पीढ़ी में ये विश्वास जताल।।

यौं जै भात खाल, वीक गीत गाल।
और पछा लै साक्षरता काम आल।।

सरकालैल शिक्षा में करि दे कमाल।
देश आब दुनीं म नाम कमाल।।

कुमाऊँनी कविताएं 'पछ्याण'

डॉ० शेर सिंह बिष्ट

डॉ० दिवा भट्ट द्वारा संपादित कुमाऊँनी काव्य–संकलन – 'पछ्याण' में ग्यारह कवियों की चुनी हुई कुमाऊँनी कवितायें संकलित हैं। ये ग्यारह कवि हैं – शेर सिंह बिष्ट 'अनपढ़' देवकी महरा, बहादुर बोरा 'श्रीबंधु', गोपालदत्त भट्ट, राजेन्द्र बोरा, बालमसिंह जनौटी, एम०डी० अण्डोला, देव सिंह पोखरिया, नवीन बिष्ट, जगदीश जोशी और दीपक कार्की। संपादकीय अथवा भूमिका के रूप में 'पछयाणैकि पछ्याण' शीर्षक के अंतर्गत संपादक ने कुमाऊँनी कविता के इतिहास का समीक्षात्मक विश्लेषण एवं कवियों के चयन के प्रति अपनाये गये दृष्टिकोण का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हुए, संकलित कवियों की रचनाओं पर प्रकाश डाला है।

इस संकलन में वरिष्ठ कुमाउंनी कवि शेर सिंह बिष्ट 'अनपढ़' की देवीथान, चौमासकि ब्याव, को छैतू, पहाड़ाक हाड़ एवं हमरि लैसुणि लियो, रचनाएं इस संग्रह में संकलित हैं। 'देबीथान' कूर्मांचलीय सांस्कृतिक परिवेश की पृष्ठभूमि में रचित, मानवीय बिडम्बना एवं विवशता का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती है। देवी माँ के मंदिर में प्रसाद चढ़ाने गए भक्त की आस्था एवं विश्वास के बीच झूलती मानवीय अस्मिता के संकट का चित्रण रचनाकार ने बापूठी कियो है। जहाँ चौमासिक बयान कविता पर्वतीय भू भाग की वर्षाकालीन प्रकृति, पर्वत–पठार, नदी–नाले, खेत–खलिहान एवं घर–आँगन का मनोहारी चित्र प्रस्तुत करती है। वहीं को छै तू' भाव भंगिमा एवं अभिव्यक्ति कौशल की दृष्टि से एक उत्कृष्ट कोटि की रचना है। महाकवि सुमित्रानन्दन पंत की 'आँसू की बालिका' एवं 'मौन–निमंत्रण' के दुग्ध–र्शकरा मिश्रित पेय का आस्वाद कराती यह रचना 'अद्वैतानंद' की सृष्टि करती है। यही रचनाकार की 'परिपाक' की स्थिति है। संस्कृताचार्यो की – 'उपमा कालिदासस्य भारवे : अर्थगौरवम्' की उक्ति इस कविता में चरितार्थ होती है। 'हमरि लै सुणि लियो' कविता आत्मकत्यपरक शैली में, वनों के विनाश के दर्द को मानवीय संवेदना के रूप में प्रस्तुत करती है। साथ ही चेतावनी पूर्ण संदेश भी छोड़ जाती कि मानव का अस्तित्व वनों के अस्तित्व के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। कवियत्री देवकी महरा हिंदी एवं कुमाउंनी में समान रूप से लिखती है। इस संग्रह में उनकी 'जगार, मैती मुलुक, आपणैं गीत, अफुलि परणि, ॐ जंगल काँ हुँ गया, ओ गीत डत, सौरासै करिये एवं उतरैंणि बुलाव' ये आठ कविताएं संकलित हैं। देवकी महरा ने कूर्मांचलीय परिवेश से जुड़े विविध विषयों पर अपनी लेखनी चलायी है। आज भी कूर्मांचल के सुदूरवर्ती क्षेत्रों में सभी रोगों की एक ही दवा है। 'जागर' लगाना उनकी 'जागर' कविता इसे उज़ागर करती है। जिससे 'मैती मुलुक' कविता में ग्रामीण बोला की दूर देश स्थित अपने ससुराल जाने की पीड़ा अभिव्यक्त हुई है

तो 'आपणै गीत' में अपना दुःखड़ा रोने से कभी फुर्सत पाकर दूसरो के दुःखी जीवन की ओर भी दृष्टिपात करने की बात कही गयी है। 'ॐ जंगल काँहुँ गया' कविता में पहाड़ों में जंगलों के अंधाधुंध कटान से होने वाले पर्यावरण असंतुलन एवं उसके खतरों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। 'ओ गीत डत' में गीतों की विषय व्यापकता एवं राष्ट्रीय एकता का आह्वाहन है तो 'सौरासै करिये' व्यंग्यपरक कविता है। 'उतरैंणि बुलाव' कविता में बागेश्वर में लगने वाले उत्तरायणी मेले के प्रति लोगों की उत्सुकता एवं मेले के असीम आनंदानुभूति को काव्यात्मक स्वरों में वाणी दी गई है। कुल मिलाकर देखें तो देवकी महरा की कविताएँ आडम्बरहीन भाषा में भावों की सपाट अभिव्यक्ति द्वारा लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हैं।

बहादुर बोरा 'श्रीबंधु' कुमाऊँनी एंव हिन्दी में विगत कई वर्षो से समान रूप से लिखते आ रहे हैं। इस संग्रह में उनकी हड़पि और ढड़ बसंतक पौण, स्ार घर आडण़ महकण जस लाग, म्यारे गौंक गा्ड – खेत, अदम बा्ट में उता्ण है गई, पहाड़ उठूँण, मैंस में मैस्योलि की कतुकै लेनी रै बॉस हौ, तु लै आदिमि दै– मैंस छै, ये आठ कविताए संकलित हैं। श्री बोरा ने व्यक्ति समाज और राष्ट्र से जुड़े संदर्भो को अपनी पैनी दृष्टि से टटोलने और उन्हें संवेदना के स्तर पर अनुभूति का विषय बनाकर, काव्यात्मक रूप में इन कविताओं में प्रस्तुत किया है। बहादुर बोरा की कविताओं के लंबे–लंबे शीर्षक काफी खटकते हैं तथा कविता पढ़ने की उत्सुकता को कम कर रहे हैं। इसके बावजूद जहां उन्होंने दोहरी अर्थ–व्यंजना का सहारा लिया है, वहाँ उनकी कविताएँ गहरा प्रभाव छोड़ती हैं।

हिंदी और कुमाऊंनी के कवि गोपाल दत्त भट्ट के अभी तक कई कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, परंतु शेरदा 'अनपढ़' की तरह की उनकी काव्य–कृतियों का अपेक्षित साहित्यिक मूल्यांकन अभी तक देखने में नहीं आया है। 'पछ्याण' में उनकी छ' कविताएँ– मि चानू, बारूदकि फसल, बसन्त, त्येरि जै हो, गीतकि गोमति, मुद्याव जगाओ संकलित हैं। यद्यपि गोपाल दत्त भट्ट की संवेदना के स्तर बहुआयामी हैं, परंतु उनमें धरती माँ का दर्द विशेष राजेन्द्र बोरा जमीन से जुड़े कवि हैं। 'बाँजि कुड़िक पहरू' इसका प्रमाण है। इस संग्रह में उनकी मारि हाक जगै दे, तुकैं याद छड?, पुन्यूँ पुज, राफ, संझ, भरी छनाँ जाँ सकल पदारथ, मायाकि फंदि एवं बाँजि कुड़िक पहरू, ये आठ कतिवाएँ संकलित हैं। भावों की विविधता के साथ–साथ अभिव्यक्ति–विधान का बहुरंगी चित्रपट राजेन्द्र बोरा की रचनाओं की खा़सियत है। 'मारि हाक जगै दे' वीर इस की फड़कती, विद्युत–रेखा–सी चमकती एवं जवानी के रक्तिम अंगारों–सी धधकती कविता है, जो माखन लाल चतुर्वेदी की 'जवानी' कविता की याद सहसा ताजा कर देती है।

बालम सिंह जनौटी हिंदी और कुमाऊंनी में समान रूप से कविताएँ लिखते हैं। ओजस्विता, अनुभूति की गहराई एवं अभिव्यक्ति का पैनापन उनकी रचनाओं की विशेषता है। उनके व्यंग्य गहरी एवं दोहरी मार करते हैं। इस संग्रह में उनकी आठ कतिवाएँ– कुमाऊंनी लैंग्वेज, करला है ज़ाल, संविधानकि पीड़, अँ अँ क, गीत, ऋतु गीत, तीन बीघा जमीन तथा उदेख संकलित हैं। नकाबपोश लोगों को बेनकाब

करने वाले उनके व्यंग्य, सामने वाले व्यक्ति को रु आँसी–हँसी हँसने को मजबूर कर देते हैं और यह रुआँसी–हँसी भी धीरे–धीरे खिसियाहट में बदल जाती है। संकलन में 'कुमाऊंनी लैंग्वेज', 'संविधानकि पीड़' तथा 'तीन बीघा जमीन' सशक्त रचनाएँ हैं।

'संविधानकि पीड़' कविता संविधान की आत्मकथ्यपरक व्यथा–कथा है– "मी भारतक सविधान छुँ। गाँधी ज्यू नामकि खादि पैरी कुकुरी बागनल, म्यार हड़िक युसि हालीं"। यह एक शब्द चित्र है हमारी संसद और वर्तमान राजनीतेक परिप्रेक्ष्य का। जनता के प्रतिनिधि कहे जाने वाले देश के कर्णधारों ने आज किस तरह संविधान को मजाक बनाकर रख दिया है, इसका जीता–जागता चित्र इस कविता में चित्रित है। 'तीन बीघा जमीन' कविता हमारी ढुलमुल विदेश नीति का एक खाका प्रस्तुत करती है। 'गीत' प्रवासी कुमाऊंनी लोगों के प्रति आत्मीयताजन्य प्रेमोद्गार हैं। 'उदेख' देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं मूल्यहीनता की जर्जशवस्था का दिग्दर्शन कराती है।

एम.डी. अण्डोला एक उभरते हुए सशक्त रचनाकार हैं तथा कुमाऊंनी एवं हिंदी में समान अधिकार रखते हैं। अभी तक उनके दो कुमाऊंनी काव्य–सग्रह एवं एक हिंदी उपन्यास प्रकाशित हो चुका है। 'पछ्याण' में उनकी–ओ रे तिरड़, गौं कैं गौं जस बणूँन, ज्याठज्यु, दिखा उज्याव, कौतिकार चुनावक जु खैंचनऊँ, न्योली, महंगाइक घ्वाड़, दुणियैकि दौड़, दौड़नऊँ और माया, ये नौ कविताएँ संग्रहीत हैं। घर–परिवार एवं ग्रामीण परिवेश से जुड़ी उनकी कविताएँ एक आँचलिक प्रभाव छोड़ती हैं। कुमाऊंनी हावतों से ही कई कविताओं के मुखड़ों की शुरूआत, रोजमर्रा की भाषा का काव्यात्मक प्रयोग एवं अभिव्यक्ति का अलग अंदाज उनकी रचनाओं की विशेषता है। कविता के विषय बहुआयामी होते हुए भी, पर्वतों के ग्रामीण अंचलों की माटी की सोंधी खुशबू से महकते हैं। अभिव्यक्ति की खोज में खेत–खलिहान, घर–आंगन, रोजमर्रा की जिन्दगी एवं कृषि कर्म से जुड़ी शब्दावली को रचना के स्तर पर, सर्जनात्मक रूप प्रदान कर तथा उसे आंचलिकता का रंग देकर, श्री अण्डोला अपनी एक अलग पहचान कराते हैं। लगभग हर कविता में कुमाऊंनी कहावतों का रचनात्मक प्रयोग, उनके रचना–विधान की एक नई अर्थवत्ता स्पष्ट करता है। 'आप घ्वाड़ न बाप घ्वाड़, यौ घ्वाड़ौंलि मूख जै फवाड़' (महंगाइक घ्वाड़') 'बुढिया अफी जै के मरी? उपनौंलि ले खै' ('ज्याठज्यु), 'के मारूँ बजार भौलि, के कन्तू सौलि' (दुण्यैकि दौड़ दौड़नऊँ) आदि वे कहावतें है, जिनसे कविता की शुरूआत हुई है। इस तरह के विशिष्ट प्रयोग एवं भाषिक–विधान का अनूठा अंदाज, उनकी रचना–शैली की निजी विशेषता है।

डॉ. देवसिंह पोखरिया हिंदी एवं कुमाऊंनी लोकसाहित्य के जानकार होने के साथ–साथ कवि एवं लेखक भी हैं। उनके अब तक कई ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। इस संग्रह में उनकी नौ कविताएँ– धौसिया ढोक धैं निशान, फुल्यूड़ि, उल्नार, वी दिन, निर्मोही कंत, त्यार मायाक आँचल में, धात!, बसंतः एक, तथा बसन्तः छ्वी संग्रहीत हैं। डॉ. पोखरिया का कथ्य विविधता लिए हुए है।

उन्होंने अभिव्यक्ति–विधान के अंतर्गत लोकवार्ता से जुड़े अभिप्रायों को आंचलित परिवेश की सांस्कृतिक लड़ियों में एक नये, संदर्भ के साथ पिरोकर, नवीन चेतना की भावधारा को अभिसिंचित एव जीवन्त किया है। 'धौंसिया ठोक धैं निशान', इसी तरह की कविता है। लोकवार्ता की 'जागर' शैली में नवचेतना का जागरण, अपने खोये हुए गौरवशाली अतीत को पुनर्जीवित करने की छटपटाहट और फिर एक कर्म–योद्धा की तरह दुनिया से टक्कर लेकर, तूफान मचा देने की कुब्बत, तन–मन में विद्युत शक्ति को प्रवाहित करने की क्षमता रखती है। फिर वह मात्र कूर्मांचल के डंगरिये का 'जागरण' न रहकर, समाज के दबे–कुचले, परस्त पड़े, पछाड़े गए जनसमुदाय के 'जनवजागरण' का उद्‌बोधन गीत बन जाता है। 'कामन–कामनै हमार आड़ौ घाप्त काँ हरान? गै दे फिरि 'भारत', जगै दे भारत।'' उत्नार' जिन्दगी के उतार की अवसारभरी कविता है। संकलन में संग्रहीत उनकी अन्य कविताएं भी अच्छी हैं।

नवीन बिष्ट एक जागरूक कवि एवं गीतकार हैं। शुद्ध पहाड़ी परिवेश में रचे–बसे नवीन बिष्ट की कविता में विशुद्ध आंचलिक प्रवाह एवं आडम्बरहीन भाषा–प्रयोग के दर्शन होते हैं। इस सग्रह में उनकी शीर्षक विहीन 'एक' से 'नौ' तक कुल नौ कविताएँ संग्रहीत हैं 'ऊँ धृतराष्ट्र छन' मैं वर्तमान धुतराष्ट्रीय नेता महाभारत की कथा को दोहराते प्रतीत होते हैं। 'बिलाण फैंगो हिमाल' में पहाड के टुटने–टूटने का दर्द है, जिसे समय रहते बचाया जा सकता है। 'आई बखत छु–टेरी सकीं काव, ऐ सकूँ सुकाव'। शहरी जीवन की कृत्रिमता एवं बौद्धिक ऐय्याशी का ग्रामीण जीवन की संस्कृति से कोई तालमेल हो पाएगा, इसमें कवि को संदेह है। इसीलिए वह कहता है– 'मेरि ल्‌ाटि–क्‌ालि हिटै दगाड़–तुमन काँ आलि सार'। कविता नौ– 'गोपियाक बोज्यूल' ग्रामीण परिवेश के कृषक परिवार की वस्तुस्थिति का यथार्थपरक चित्र प्रस्तुत करती है। कवि ने कूर्मांचलीय ग्रामीण–संस्कृति की बारीकियों और बिडम्बनाओं को संवेदना के स्तर पर अनुभव किया है और बिना लाग–लपेट के शब्दों को सर्जनात्मक भाषिक विधान का रूप दिया है।

जगदीश जोशी उदीयमान कवि हैं। इस संग्रह में उनकी दव कविताएँ–पछ्याण, सुदामा पुछूँ, धार में ट्‌वल, जैड़णी उज्याव, नन्देबि और जती, मि सव छुँ, घट और आफर, उनरि दुकान, नानिडाइ–ठुल पेड़ संग्रहीत हैं। जगदीश जोशी की 'पछ्याण' कविता के नाम पर ही संभवतः इस काव्य–संकलन का नाम 'पछ्याण' रखा गया हो, परंतु अपनी 'पछ्याण' कविता में उन्होंने जीवन के कुछ शाश्वत सत्यों को छुआ है। जगदीश जोशी ने व्यक्ति, समाज और देश की नब्ज को पहचानने की कोशिश की है, और उसे अपनी कविता में वाणी भी दी है, परंतु कहीं–कहीं निपट सपाट बयानी एवं भाषिक सर्जनात्मकता का अभाव, कविता की चमक को कम कर देता है।

नये कवियों में दीपक कार्की ने अपनी एक अलग पहचान बनायी है। 'प्याणतार' नामक कुमाऊंनी हस्तलिखित पत्रिका भी उन्होंने निकाली। यद्यपि वे कुमाऊंनी एवं हिंदी में समान रूप से कविता करते हैं। इस संग्रह में उनकी दस

कविताएँ– 'किरमई फाँक, ह्यूँन, क़ान, नतरि, चिन्ताऽक किड़, किलै म्यार स्वैंण में ऐंछै, गीत, आग छूँ मैं, नौताड़ एवं नि चिड़याओं संग्रहीत हैं। दीपक की कविताऐं बातचीत की लय में लिखी गई आत्मकथ्यपरक कविताएँ हैं। उनमें नाटकीयता का आभास तो होता है परंतु उसमें नाटक के–से संवाद नहीं होते। कवि वक्ता है, पर वह अधिवक्ता के स्तर पर उन तमाम सवालों का जवाब दे रहा है, जो व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की समस्याओं से जुड़े हुए हैं। दीपक की कविताओं में एक निश्चित संदेश निहित रहता है और वह 'संदेश' कल्पना की उड़ान न होकर, घटनाक्रम के उतार–चढ़ाव पर आधारित होने के कारण तर्क मिश्रित होता है। 'क़ान' 'नतरि' 'नौताड़' और 'नि चिड़याओ' इसी तरह की कविताएँ हैं, जहाँ एक निश्चित संदेश के साथ चेतावनी भी है,– 'क़ान छुँ मैं, मेरि न मानलै– त्यार क़ान झाड़ि द्यून'। (क़ान)। 'फिर स्यूँ जस तराण और स्यावेकि जै बुद्धि लै धरियै रै जैं', (नतरि)। ''नानैं रूनी तडये किड़ पैदे निहुन', (चिन्ताडक किड़)। ''सौकार बाबू देख, ग ग ग ग तब कूनी–बखत छु, आइ लै समौव,'' (नौताड़) आदि। 'किलै म्यार स्वैंण में ऐंछै'– कविता सृजनात्मक भाषिक संरचना के कारण एक प्रौढ़ रचना है।

इस तरह कुमाऊंनी के नये–पुराने ग्यारह कवियों की चुनिन्दा कुमाऊंनी कविताओं का यह संग्रह पठनीय है।

'पछ्याण'

संपादक- डॉ. दिवा भट्ट

प्रकाशक- श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, माल रोड़, अल्मोड़ा (उ.प्र.)

पृष्ठ- १३४

मूल्य- रु. ३०.००

रमेश चन्द्र साह की कुमाऊँनी कविताएं

उक्‌ाव–हुल्‌ार

बालम सिंह जनौटी

साहित्य जगत में हिन्दी के सुविख्यात लेखक एवं हमीदिया कॉलेज भोपाल, म.प्र. में अंग्रेजी भाषा के प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष डा. रमेश चन्द्र शाह का कुमाऊँनी कविता संग्रह पढने से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि माटी की गन्ध कभी मिटती नहीं। वह मनुष्य के मन में चिरन्तन वास करती है। अवसर मिलने पर माटी के बोल बनकर एक साक्षात थाती बन जाती है, अपनी पीढियों के लिए। हिन्दी की दर्जनों चर्चित पुस्तकों के लेखक डा. शाह की सम्भवतः कुमाऊँनी में यह पहली पुस्तक है। उक्‌ाव– हुल्‌ार।

भाषा बोली के विषय में अपनी भूमिका 'द्वि आँखर' में डा. शाह ने लिखा है, हिन्दी भै हमरि पढ़ण–लेखणकि भाषा, पहाडि भै, हमरि इज–बाबुनकि बोलि। आपुण भै बैणिनाक दगाड़ कभैं लै ए आँखर हिन्दी बुलाण चौ तो मुख में बुज जस लागि जाँ। कवि का यही अन्तर्मन है जिसने उसे 'उक्‌ाव– हुल्‌ार' लिखने के लिए अंकुरित कर दिया। द्वि आँखर में ही कवि ने इस संग्रह को अपनी बोली की अनबुझी प्यास को बुझाने का प्रयत्न बताया है। 'सैत भितेर भितेरै एक भौतै पुराणि अणबुझियै प्यास रै गे छौ, को जाणू, 'हमुकैं लै पत्त नि चल कि उ प्यास कैं पहाडि नौलनौ ठण्ड पाणि चैन पड़ि रौ' प्रस्तुत कविता संग्रह की रचना पर कवि ने मानो पानी के नौले के पास जल सम्वर्धक शीतल बाँज का एक वृक्ष रोपित कर दिया है। उन्होंने 'उक्‌ाव–हुल्‌ार' के द्वि आँखर में लम्बी, लच्छेदार, ठेठ, मीठी व रसीली कुमाऊँनी भूमिका प्रस्तुत कर यह भी प्रमाणित कर दिखाया कि कुमाऊँनी भाषा का गद्य लालित्य भी पद लालित्य से कम नहीं है।

लोकजीवन की प्रेरणाओं से साक्षात्कार कराते हुए कवि का मानना है, सयाणनकि बात आर औंलौंक स्वाद, इनेर बादै में पत्त चलौं कौंनी, कुमाऊँनी कविताओं के इस संग्रह को कुमाऊँनी के चर्चित कवि शेरदा 'अनपढ़' को भेंट करते हुए डा. शाह ने लिखा है, 'जैक लटपटि आब पहाड़ और कुमाऊँनी कि सबनै लटपटि है चुकि गे, उकणि यो कवित्त लै भेंट चढ़ रई, मैल नि चढ़ै, आफी है चढ़ि गयीं'।

काव्य संग्रह में कविताओं के अनुक्रम में प्रथम कविता कुमाऊँनी परम्परा की श्रद्धेय मंगलाचरण गायिका 'गिदाऽरि' को समर्पित की गयी है। जिसमे गिदाऽरि को उत्सवों के अवसर पर मंगलाचरण गाने के क्षणों में वर्तमान पाश्चात्य परिवेश के प्रचलन के कारण अपनी उपेक्षा के दर्द से सिसकते व उलाहना देते हुए चित्रित किया गया है–

कुणै में ठाड़ रै गयी कौ मैं,

शगुन आँखर लै नि गै सक।

नि चैन मैकैं के लै तुमर,

बुड़ पराण मै आफी ससक्ाल।

कवि कुमाऊँनी बोली के प्रति अपने अनन्य लगाव के साथ कुमाऊँनी बोली की महत्ता को प्रकट करते हुए 'बोलिक ब्ार में' कहते हैं –

पालड़ लै जाँ चुपड़ है जाँ

हमरि ब्ोलि उ अस्ल ध्यूँ छु।......

.....बोलि में चुपड़ बचै राखण।

घर–शहर में प्रचलित उलटबासियों को कवि ने 'नानछिनै बै' कविता में एक अनूठे अन्दाज से बड़े बोधगम्य व लालित्यपूर्ण ढंग से उद्घाटित किया है।

कवि की कविताओं में अपने पहाड़ी जीवन में सुरम्य प्रकृति के साथ अन्तरंग साक्षात्कार एवं मनवाँछित अनमोल सुख की अनुभूतियाँ उसे स्वयं पर गर्व अनुभव करने को विवश करती हैं। ऐसे में वह उन लोगों के जीवन को अधूरा ही समझने लगता है जिन्हें उन सुखों की संगत न मिली हो।

कॅस भै उ जैल ह्यौना म्हैण में,

प्ाख में भैबेर घाम नि त्ाप।

मैंस भै के भै? ठठ्वाणि दगाड़,

जैल नि खई भै जरगा ग्ाब।

अपनी 'थात' अर्थात मातृभूमि से जिस तरह का अनन्य लगाव कवि अनुभव करता है कवि की यह निश्छल धारणा है कि सभी में अपनी 'थात' के प्रति ऐसी अनन्यता होती होगी। कुमाऊँनी जन समाज में प्रचलित प्रतीकों व उपमानों को डा. शाह ने अपनी कविता में मधु बिन्दु सा टपकाया है।–

गदुवा फुल्यूड़ जसि

पाकी बिरूड़ जसि

उल्ालि च्यूड़ जसि

आइ लै वी याद ई

के छी जाणि नौं वीक!

कवि को अपने प्रवासी जीवन में अपने घर–समाज की आनन्ददायक व रंगतदार, तिथि–त्यौहार और रीति–रिवाजों की अविस्मरणीय क्षणों में मनोबिहार करते हुए उनकी 'नरै' लग जाती है, वह उन्हें पाने के लिए उतावला हो उठता है–

छाजन बटी चै रई मकैं

आइ लै रिक्खू बुड़ दिवाइक,

अगास दि जॅस, लाल लुकुड़ में

टॉगियै रैगो हँस पराण यो।

स्मृतियों के झरोखें से झाँकते हुए कवि को वह बहुरूपिया अर्थात 'भैरूपी' भी साक्षात्कार कराते चलता है जो उसे नित नई झाँकियाँ दिखाकर भी अपने परिचय को छुपा न सका। जीव जगत को समझने की अपनी अद्‌भुत कल्पना शक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँचकर कवि 'भ्योव' कविता की रचना कर बैठता है। वर्तमान में समाज में तीव्र गति से जारी आवास प्रवास पलायन–पुनर्वास की परिस्थितियों का वर्णन करते हुए कवि लिखता है–

भ्यैराक जै भितेरि गई

भितेराक जै भ्यैरी गई......

मिलै या भितेरी गई।

'पुराण छन्द में नइ अरज' के माध्यम से कवि समाज को सचेत किया है।

छन घामै किलै तुम यॉं अरड़ी रौछा?

सूरजाक वंश में दो दालदिर कैल फोक?

उपेक्षित मानव के जीवन की वितृष्णा को भी कवि ने भली भाँति अपनी कविताओं में आत्मसात किया है वे अपने साथ ही अपने अन्तर्मन की चाहत को भी व्यक्त किये बिना नहीं रहते –

मकणी चैं आब चाड़नौ चिचाट,

रात्रि बै ब्याव तक गाड़क सुसाट।

एक तरफ मनुष्य बेकार पडे हुए हैं दूसरी तरफ हमारी प्राकृतिक उपलब्धियों का उपयोग न होने से हमारे लिए इसकी बर्बादी को बचाने का उत्तरदायी किसे माना जाय– कवि का प्रश्न है–

ख्याड़ जाणौ घाम

ख्याड़ जाणौ पाणि

ख्याड़ जाणई मैंस

काकैं नौं धरछा आ्ब?

कविताओं में समाज के वर्तमान परिवेश में रहते हुए कवि को अपनी देखी हुई पुरानी पीढ़ी के उदार लोगों का भी ध्यान आ जाता है। दो पीढ़ियों के सन्धिकाल को भोगते हुए समाज की वर्तमान पीढ़ी को झकझोरने का प्रयास करते हुए कवि सभी को अपने अन्तर्मन में झाँकने की प्रेरणा कविताओं में देता है कि हम क्या से क्या होने थे, क्या हो गये। उक्ाव–हुल्ार शीर्ष कविता में कवि ने जीवन संघर्ष में थकावट के साथ–साथ थकावट दूर करने के अनुभव की भी प्रेरणा प्राप्त की है। यही वह पाठकों को भी उपलब्ध कराना चाहता है। इसीलिए इस काव्य संग्रह का भी नामकरण सम्भवतः 'उक्ाव–हुल्ार' के विशेषण से किया गया है–

खूबै काटीं उक्ाव–हुल्ार

आब जै अघिल सैण देखि रौ,

पटै बिसौणी जगै यै भै

जाँ बटि द्याप्ता दैण है जौ।

कुमाऊँनी समाज में व्याप्त कुरीतियों का समापन आवश्यक मानते हुए उनके साथ सुसंस्कारों के नष्ट होने को कवि घोर चिन्ता का विषय मानता है, और कविताओं में उनके संरक्षण के लिए सचेत करता है। समाज में फैले अनाचारों के बीच रहकर उसकी अनदेखी कर अपनी कुशल चाहने वाले बड़े लोगों से कवि व्यंग्यपूर्ण चेतावनी स्वरूप कहता है–

दुनि में रौ

जस पाणि में कमल

कच्यार बटि ठाड़ हैबेर लै

सूरजै देखो–सूरजै पियो

कच्यार उज्याणि बिल्कुल नि चौ।

वर्तमान में घर के चूल्हे में हुए परिवर्तन को सुविधाजनक बताते हुए भी वह पुरानी स्वादिष्ट रसोई से तुलना कर बैठता है। यह लोक जीवन की एक झांकी है। अपनी असावधानी व लापरवाहियों से दुराचारियों को उनकी कुनीतियों के बल पर राज्य व्यवस्था का उत्तरदायित्व सौंप देने पर समाज को भी फटकारने से कवि किंचित नहीं चूकता–

आइ काँ है, आइ देखला अघिल

जदिन पड़ौल तुमार ख्वारन,

तुमरै बड़ाई मुसल!

दूसरों के बहकाने पर पृथकतावाद की हवा में बहने वाले भी कवि की दृष्टि से अदृश्य न हो सके। दूसरे की सरज़मी को हड़पने की मनसा रखने वाले तानाशाह 'सद्दाम हुसैन' को भी कवि ने कुमाऊँनी भाषा व भावों के घेरे में बडे आकर्षक ढंग से धर दबोचा और सात समन्दर पार से ही फटकार लगा दी। भरी दुपहरी में समाज की दुरावस्था के स्वप्न से साक्षात्कार करता हुआ आश्चर्य चकित कवि इन पंक्तियों को उद्घृत करता है–

भैटी छुँ जाणि कैकि दुकान पहौरै बेर मैं,

तालै सामणि नालिजै देखीण

नालि मे टोटिल हई भै–को?

पछ्याण ल्हि मैंल अरे!

यो त पुजारि ज्यूक च्योल

चर्नामिर्त पेउनेर भै जो

उइ छु.कौ यो! के खोर फुट यैक!

काव्य संग्रह में संकलित कुल ४६ कवितायें सारगर्भित हैं तथा पाठकों को सोचने के लिए विवश करने की क्षमता रखती हैं। कविता संग्रह को तीन खण्डों में विभाजित किया गया है परन्तु वर्गीकृत नहीं किया गया है। कुमाऊँनी गद्य लेखन 'द्वि आँखर' में कवि ने स्वर की अल्पता के लिए हलन्त प्रचलित चिन्ह का प्रयोग किया है जबकि कुमाऊँनी कविता लेखन में विवादित तिरछी रेखा का प्रयोग कर डाला है। मुख्यपृष्ठ पर 'उकाव–हुलार' का आकर्षण है। काव्य संग्रह भाषा बोली की दृष्टि से खसपर्जिया शाह घराने की कुमाऊँनी बोली का प्रतिनिधित्व करता है। कुमाऊँनी साहित्य जगत के लिए यह एक धरोहर है तथा कुमाऊँ के प्रवासी साहित्यकारों के लिए भी प्रेरणादायक है।

'उकाव – हुलार' कीमत रुपये पच्चीस मात्र

मिलने का पता-- बसुन्धरा, गंगोला– मोहल्ला अल्मोड़ा है।

*****

पहाड़ आगे – भीतर पहाड़

डाॅ॰ देवसिंह पोखरिया

'पहाड़ आगे : भीतर पहाड़' हिन्दी के कथाकार बलवंत मनराल की प्रथम काव्य–कृति है। इस काव्य संग्रह को कवि ने 'उत्तराखड के नाम' समर्पित किया है। जैसे साठोत्तरी कहानी के वे एक सशक्त हस्ताक्षर हैं, वैसे ही उनकी यह काव्यकृति आधुनिक हिन्दी काव्य के नए द्वार प्रस्तुत करती है।

इस संग्रह में कुल २३ कविताएं हैं, जो सारी की सारी विगत दिनों हुए उत्तराखण्ड आंदोलन के परिणामस्वरूप एक कहानीकार के हृदय में उपज आक्रोश है। इन कविताओं के माध्यम से कवि जड़ता एवं मौन को तोड कर अत्याचार के विरूद्ध संगठित होकर आततायियों से मुकाबला करने की प्रेरणा देता है। भारत की अखण्डता की सुरक्षा तभी संभव है, जब विभिन्न क्षेत्रीय लोगों की सुरक्षा की समुचित व्यवस्था सुनिश्चित हो।

कवि स्थान–स्थान पर पहाड़ की सभ्यता, संसकृति, ईमानदारी, निष्ठा, सादगी आदि का गुणगान करते हुए स्वतंत्र भारत में अपने ही सत्तालोलुप शासकों द्वारा किए गए नारी – उत्पीड़न एवं अत्याचारों से आहत हो उठता है। अतः वह सत्य की लड़ाई लड़ना चाहता है व हर अन्याय का विरोध करता है। पहाड़ों के आगे, पहाड़ों के अनन्त सिलसिले हैं। एक पहाड़ से दूसरा पहाड़ दिखता नहीं। इन अनंत पहाड़ों की तरह यहाँ की समस्यायें भी अनन्त हैं। शान्तकामी पहाड़वासी निरन्तर इन समस्याओं से जूझते, जीवन–यापन करते देश की रक्षा करते हैं। ऐसे भोले–भाले लोगों के साथ बलात्कार एवं हत्या जैसे जघन्य कृत्यों का किया जाना कदापि क्षम्य नहीं है। कवि याद दिलाता है कि पहाड़वासी इतने कमजोर नहीं हैं कि वे हर जुल्म को चुपचाप सह जाएं। अपने हृदय की इसी पुकार को कवि ने एक कारगर हथियार के रूप में वाणी दी है। अत्याचार और अनाचार के विरूद्ध तीखी कविताओं का स्वर दिया है। कवि कुमाऊँ और गढ़वाल को अविभिक्त 'उत्तराखड' के रूप में संगठित रह कर सत्ताधारियों से मुकाबला करने का आहवान करता है। काव्य की भूमिका – 'पहाड़, उत्तराखण्ड और मैं' में वह कहता है – "अपनी किताब में मैंने हर जगह पहाड़ की बात की है। मेरे विचार में पहाड़ों की स्थिति चाहे वह गढ़वाल, कुमाऊँ, हिमांचल, अरूणाचल प्रदेश या फिर नेपाल ही क्यों न हो, भौगोलिक समानताओं के कारण एक सी हैं। इन कविताओं में 'पहाड़' शब्द विशेषकर उत्तराखंड केलिए ही कहा गया है, क्यों कि ये कविताएं उत्तराखण्ड आंदोलन से प्रभावित होकर लिखी गई थीं। .... आज समूचा कुमाऊँ, गढ़वाल उत्तराखंड के नाम से ही पुकारा जा रहा है।.... कविताओं में पहाड़ से तात्पर्य न केवल पहाड़ बल्कि भंवर व तराई क्षेत्र भी है। भवर व तराई पहाड़ों के पादप क्षेत्र

हैं। आज (इस क्षेत्र की एक रूपता के लिए) इस अंचल को पुन. अपने कत्यूरी शासन के स्वरूप का इंतजार है, जिसके लिए इस क्षेत्र के लोग काफी समय से संघर्षरत हैं।''

खटीमा, मसूरी और मुजफ्फरनगर आदि में हुए भीषण नरसंहार, बलात्कार तथा उससे अपजे जनाक्रोश को इस संग्रह की कविताएं जीवंत ढग से चित्रित करती हैं। ये कविताएं कविताएं नहीं, कवि के अन्तर्मन से उठी दाहक ज्वालाएं हैं, जो हर अन्याय और अत्याचार को भस्मसात कर देना चाहती हैं। संग्रह की पहली ही कविता – 'ऊँट अब पहाड तले' में कवि कहता है –

''धध के पहाड़ की दुःसह आग
आँच से तप्त मैं
कठोर चट्टानों को फोड कर
समर में अवतरित,
अन्याय अनाचार से
दो–दो हाथ करने
भूधर का तनय मैं प्रस्तुत हूँ''–।

'कभी नहीं मरते हम' कविता पहाडवासियों के अजरत्व और अमरत्व को प्रतिपादित करती है। वीरता का कभी अंत नहीं होता, कवि कहता है –

''काली चट्टानों के नीचे दब कर भी
झाँवरी घास से उभरेंगे
लोहे की छाती चीर मुखर होते रहेंगे
वक्त के माथे की लकीरों में बने रहेंगे।''

''आक्रोश'', ''महाबली,'' अच्छा लगता है, ''हे राम,'' ''शहंशाह'' ''गांधी जयंती को प्रजातंत्र'', ''षडयंत्र,'' ''प्रतिकार'' शीर्षक छोटी होती हुई भी प्रखर और मर्मवेधी हैं।

उस प्रजातंत्र की ऐसी विडम्बना? ''लोग मांग रहे 'पहाड़' कहाँ से लाऊँ मैं कवि ने पृथक पहाड़ी राज्य की वकालत की है। ''प्रिय बहना, मैं अभी जिंदा हूं'' शीर्षक कविता मर्म को छू लेती है। कवि उसे ढांढस व सांत्वना देकर सिंहवाहिनी बनने का आहवान करता है। पुलिस कुव्यवस्था को 'उनको भी कोई नाम दो' कविता उजागर करती है।

'मुक्ति' कविता में जनतंत्र की वास्तविक शक्ति का वर्णन है, जन में ऐसी शक्ति है, जिसके हाथों बड़े–बड़े शक्तिशाली साम्राज्यों की मुक्ति हो चुकी है। 'यदि मुझे सत्य लिखने दो' शीर्षक कविता पिछले दिनों उभरे उत्तराखण्ड आंदोलन के

वातावरण को जीवंत ढंग से प्रस्तुत करती है। "मैं पहाड़ी हूं" कविता कवि के पहाड़ होने के स्वाभिमान को व्यंजित करती है। 'चेतो इतिहास के याद करो' इस संग्रह की एक सशक्त कविता हे। इसमें सत्ताधारियों को पौराणिक प्रतीकों – धृष्टराष्ट्र आदि नामों से अभिहित करते हुए कवि आगाह करता है और कहता है कि इतिहास अपने को फिर–फिर दुहराता है, जनाक्रोश के सामने कोई भी सत्ता टिक नहीं सकती –

कवि 'कौन सा विकल्प' कविता में मानवीय और पारिवारिक संबंधों की तलाश करता है और मानवीय संबंधों से परे रह कर जो लोग जीते हैं, जिन्हें आत्मीय संबंधों में भी स्वार्थ की खोज है, ऐसे ही जीवन मूल्यों से हीन लोगों पर तीखे व्यंग्य करता है। "ओ, पाषाणी धारा इतिहास पुरूष में ही तो हूं" कविता पहाड़ी सरिता को संबोधित कर लिखी गई है।

'पहाड़ आगे भीतर पहाड़' इस संग्रह की सर्वाधिक सशक्त एवं लंबी रचना है। इसी कविता के आधार पर कवि ने इस संग्रह का नाम भी रखा है। यह कविता समग्र पहाड़ का एक जीवंत चित्र प्रस्तुत करती है। कवि ने इसमें पहाड के चिर शोषित रूप को उकेरते हुए, भ्रष्ट राजनीति का नंगापन प्रस्तुत करते हुए, अग्निपथ को ढूँढने का प्रयत्न किया है। वास्तव में पहाड़ है क्या इस पर प्रकाश डालते हुए वह कहता है –

"पहाड़ और पहाड़ ... ओह ! कितने पहाड़?
अभाव – दैन्य के पहाड़।
मनीआर्डरी व्यवस्था से ग्रस्त – परवश पहाड़।
पलायन वृत्ति से उड़ते पहाड़।
आजीवन अकेलेपन से – अभिशापित पहाड़।
जर्जर बूढ़ों के दुर्बल कंधों पर – अधमरा पहाड़।
दोहन – शोषण से – लुटा पहाड़ ....
तथाकथित दो आकांओं से – छला पहाड़।"

पर कवि का विश्वास है कि कभी तो पहाड़ की दशा सुधरेगी।

कुल मिलाकर बलवंत मनराल का यह संग्रह एक सशक्त काव्य संग्रह है – शिल्प की दृष्टि से भी और कथ्य की दृष्टि से भी उत्तराखण्ड विषयक कवि की धाराणाएं स्पृीहणीय है। यह संग्रह पठनीय एवं संग्रहणीय है।

इन कविताओं की ऊर्जस्विता का अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि इन्होंने ७ वर्षो से बेजुबान पड़ी कवि की वाणी को स्वर दे डाला। □

पहाड़ आगे : भीतर पहाड़, बिनसर प्रकाशन, पुष्पविहार नई दिल्ली मूल्य पचास रूपये

आधुनिक कृषि में आई०पी०एम० की आवश्यकता क्यों?

विगत ६० वर्षों से कृषि की आधुनिकतम तकनीकी का उपयोग करने से नाशीजीव (पेस्ट) की समस्या में काफी वृद्धि हुई है, जिस कारणवश, उत्पादकता वृद्धि में अवरोध आया है तथा विभिन्न प्रकार के पर्यावरण असंतुलन व प्रदूषण की भी समस्याओ का सामना करना पड़ रहा है। उत्पादन में वृद्धि लाए जाने हेतु गत दो दशकों से पौध सुरक्षा उपाय हेतु विभिन्न प्रकार की कीटनाशको (पेस्टीसाइड्स) का प्रयोग प्रमुखता के तौर से किया गया है। कीटनाशकों के अन्धाधुन्ध व असंतुलित प्रयोग के कारण नाशीजीवों से सहनशीलता आ गई है, कम हानिकारक कीटों के अधिक हानिकारक होने का प्रत्यावर्तन हुआ है, कीटनाशक का अवशेष, स्वास्थ्य पर रसायनों का विषैला प्रभाव व विभिन्न प्रकार की बीमारियों का प्रादुर्भाव, लाभकारी (मित्र) कीटों का विनाश हुआ है, प्राकृतिक जैविक असतुलन तथा प्रदूषित वातावरण होने के साथ-साथ उत्पादन लागत में वृद्धि भी हुई है।

इस समस्या पर नियंत्रण पाने हेतु वैज्ञानिक खोजों के आधार पर विश्व खाद्य संगठन भारत सरकार एवं उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा जिस कार्य विधि को कृषको द्वारा अपनाने पर बल दिया जा रहा है। वह आई०पी०एम० अर्थात इन्टिग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेंट (एकीकृत नाशी जीव प्रबन्धक) यह एक नाशीजीव एवं खरपतवारों को नियंत्रण करने का ऐसा बहुउद्देशीय कार्यक्रम है, जिसमें वातावरण के सभी संसाधनो जैसे – विभिन्न शस्य क्रियाएं, अवरोधी प्रजातियों का प्रयोग समुचित खरपतवार नियंत्रण, महामारी व तीव्र प्रकोप की दशा में सामुहिक प्रयास, बराबर फसल सर्वेक्षण एवं अपरिहार्य स्थिति में रसायनिक उपचार व सुरक्षित रसायनों का प्रयोग जैसी क्रियाओं को मिश्रित करके ऐसा उपयोग करना है, जिससे नाशीजीवों की वृद्धि आर्थिक क्षति स्तर की सीमा न करने पाए और कीटनाशकों/रसानों से हो रहे प्रदूषण/दुष्प्रभाव को यथासम्भव कम किया जाए।

अवरूद्ध कृषि उत्पादन में वृद्धि लाए जाने तथा पर्यावरणीय सुरक्षा वर्ग ध्यान में रखकर "आई०पी०एम० कार्यालय" को कृषकों तक पहँचाने एवं उन्हें आवश्यक जानकरी प्रशिक्षण दिए जाने का कार्यक्रम विशेषतः तीन याजनाओ के अर्न्तगत जनपद में क्रियान्वित कराया जा रहा है :–

१) आई०सी०डी०पी० – आई०पी०एम० (धान)
२) एफ०एफ०एस – आई०पी०एम० (धान)
३) आई०पी०सी० – (सोयाबीन)

इस कार्यक्रम के अर्न्तगत चयनित स्थलों में चयनित ३०–३० कृषकों के १० सप्ताह तक (सप्ताह में एक निर्धारित दिवस) में उनके खेतों पर प्रशिक्षण व प्रदर्शन करके उन्हें आई०पी०एम० तकनीक अपनाने हेतु प्रेरित किया जाता है। ऐसा करने से कृषकों को निम्न जानकारी प्राप्त होती है –

किया गया। अब तक की सूचना के आधार प लगभग २००० ग्रामों को साक्षर करने हेतु अंगीकृत किया जा चुका है। राजस्व ग्रामों को अगीकृत करने विषयक शासन से निर्देश प्राप्त हुए हैं। तदनुसार भी कार्यवाही की जा रही है। समग्र साक्षरता/उत्तर साक्षरता का सम्पूर्ण लक्ष्य प्राप्ति के लिए जनपद ग्राम पंचायत राजस्व ग्राम ३००२ साक्षरता का गठन किया जा रहा है।

जनपद के सभी विभाग के समस्त क्षेत्रीय अधिकारियों, प्रधानाचार्यों, प्रधानाध्यापकों तथा कर्मचारियों द्वारा जनपद के ३००२ साक्षरता गांवों को गोद लेने के लिए प्रक्रिया प्रारम्भ कर दी गई है। गाव गोद लेने वाले व्यक्तियों/संस्थाओं का नैतिक दायित्व होगा कि वे गोद लिये ग्रामा का सम्पूर्ण साक्षरता लय प्राप्त करने के लिए कार्य करें। कार्यक्रम के अर्न्तगत ३८५०० के लिए उत्तर साक्षरता तथा ५१५०० के लिए सम्पूर्ण साक्षरता कुल ६०००० ज्ञानार्थियों को साक्षर करने का प्रयास किया जा रहा है। कार्यक्रम की समीक्षा के लिए जनपदीय / तहसील एवं ब्लाक स्तरीय कोर ग्रुप को गठन भी किया गया है।

सम्पूर्ण साक्षरता अभियान में नई पंचायती व्यवस्था के अर्न्तगत समग्र साक्षरता/उत्तर साक्षरता की निगरानी ग्राम पंचायतों द्वारा की जायेगी वस्तुतः शिक्षा ही आर्थिक विकास का आधार है, अतः पंचायतों सम्पूर्ण साक्षरता का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए उचित माहौल तैार किया जयेगा स्वयं सेवकों का चयन कर के उनको इस पुनीत कार्य के लिए प्रेरित करना पंचायतों का एक प्रमुख उद्देश्य होगा इस अभियान को ८ से १० माह में पूरा किया जाना है। जनपद के २४० अम्बेडकर ८१५ गाँधी ग्रामों को भी उत्तर साक्षरता कार्यक्रम के अन्तर्गत पूर्ण साक्षर करने हेतु अंगीकृत करने की कार्यवाही की गई है। अम्बेडकर ग्रामों को पूर्ण साक्षर करने क लिए ग्राम विकास अधिकारी तथा ग्राम पंचायत अधिकारी द्वारा गांव गोद लिये गये हैं जो साक्षरता के अतिरिक्त अन्य विकास कार्यों को भी अम्बेडकर गांवों में पूरा करायेंगे। सम्पूर्ण साक्षरता कार्यक्रम को जिलाधिकारी श्री कुमार कमलेश की अध्यक्षता में प्रभारी साक्षरता व मुख्य विकास अधिकारी श्री एन०आर गोकर्ण के कुशल निर्देशन में आगे बढ़ाया जा रहा है। साक्षरता समिति के सचिव जिलाविद्यालय निरीक्षक श्री पानगिरी गोस्वामी की भी इसमें प्रमुख भूमिका है।

****

उल्टी दस्त की रोकथाम हेतु क्या करें

१. पीने की पानी अच्छी तरह उबाल कर अथवा क्लोरीन युक्त ही पियें।
२. खुली खाद्य सामग्री, सड़े गले फल, बासी भोजन कदापि प्रयोग न करें।
३. घर में तथा घर के आस पास साफ सफाई रखें तथा मक्खी/ मच्छर नहीं रहने चाहिए।
४. खाने से पूर्व तथा शौच के बाद हाथ राख या साबुन से अवश्य धोयें।
५. मल एक स्थान पर गढ्ढा बनवाकर उसमें करना चाहिए।
६. खाने पीने की वस्तुओं को एककर रखें ताकि उस पर क्खियां न बैठने पायें।
७. मीजिल्स की रोकथाम हेतु
   - ★ शिशु को नौ माह पूर्ण होने पर (९ से १२) माह के बीच मीजिल्स का टीका अवश्य लगवाएं।
   - ★ मीजिल्स (खसरा) होने पर यदि बच्चे की खांसी व पसली चलने की शिकायत हो तो तुरन्त चिकित्सालय में ले जाएं।
   - ★ मीजिल्स संक्रामक रोग फैलने की दशा में एक से पांच वर्ष आयु वर्ग के समस्त बच्चों को खसरे का टीका पुनः लगावें तथा वी० 'ए' की खुराक भी पिलावें।

उल्टी दस्त होने पर क्या करें

१. प्रचुर मात्रा में स्वच्छ उबला जल, मट्ठा, कोई भी तरह का पेय पदार्थ, ओ०आर०एस० घोल तथा नमक चीनी का घोल रोगी को देते रहें।
२. छोटे बच्चे को स्तनपान कराते रहना चाहिए।
३. अधिक उल्टी दस्त होने पर रोगी को निकटतम उपकेन्द्र या चिकित्सालय में दिखायें।

याद रखें उल्टी दस्त का रोग संक्रमित जल व भोज्य पदार्थों से फैलने वाला रोग है तथा मक्खियां इस रोग की वाहक हैं।

डॉ० आर०सी० आर्या०
मुख्य चिकित्सा अधिकारी,
अल्मोड़ा

गोवर्द्धन तिवारी राजकीय बेस चिकित्सालय अल्मोड़ा की उपलब्धियां

कुमाऊँ मण्डल में मेडिकल कालेजों के समकक्ष चिकित्सा सुविधाएं उपलब्ध कराने के उद्‌देश्य से गोवर्द्धन चिकित्सालय अल्मोड़ा की स्थापना (उदघाटन) ५ सितम्बर, १९८६ को हुआ। तब से यह चिकित्सालय जनपद व जनपद से बाहर कुमाऊँ मण्डल के मरीजों को विशिष्ट चिकित्सा सुविधा उपलब्ध करा रहा है। चिकित्सालय में शल्य चिकित्सा अनुभाग, हृदय रोग अनुभाग, ई०एन०टी० अनुभाग, काय अनुभाग, अस्थि रोग अनुभाग, न्यूरो सर्जरी अनुभाग, चेस्ट अनुभाग, प्लास्टिक सर्जरी अनुभाग, गायनिक अनुभाग, पैथोलौजी अनुभाग, एक्सरे अनुभाग, फिजियाथरैपी अनुभाग, नेत्र अनुभाग, एनीस्थीसिया अनुभाग व अल्ट्रासाउण्ड अनुभागों की स्थापना की गयी है। मरीजों हेतु विशिष्ट एवं अतिविशिष्ट चिकित्सा सुविधा हेतु चिकित्सालय में ब्लड बैंक की स्थापना, आई०सी०सी० यूनिट व अल्ट्रा साउण्ट की स्वीकृति व स्थापना कार्य अन्तिम चरणों पर है चिकित्सालय में मरीजों की सुविधा हेतु इंडोस्कोप अपर जी० आई० एवं क्लोनोस्कोप की स्थापना के प्रयास किये जा रहे हैं।

उल्टी दस्त होने पर क्या करें

१. प्रचुर मात्रा में स्वच्छ उबला जल, मट्ठा, कोई भी तरह का पेय पदार्थ, ओ०आर०एस० घोल तथा नमक चीनी का घोल रोगी को देते रहें।
२. छोटे बच्चे को स्तनपान कराते रहना चाहिए।
३. अधिक उल्टी दस्त होने पर रोगी को निकटतम उपकेन्द्र या चिकित्सालय में दिखायें।

याद रखें उल्टी दस्त का रोग संक्रमित जल व भोज्य पदार्थों से फैलने वाला रोग है तथा मक्खियां इस रोग की वाहक हैं।

मुख्य चिकित्सा अधीक्षक
गौवर्द्धन तिवारी राजकीय
बेस चिकित्सालय, अल्मोड़ा

उत्तराखण्ड चारा घास एवं बीज उत्पादन परियोजना

उत्तराखण्ड में पशुओं, विशेषकर दुधारू पशुओं का औसत उत्पादन बहुत कम है, जिसका मुख्य कारण पशुओं को आवश्यकतानुसार वर्षभर पौष्टिक चारे का न मिलना है। पशुओं को दाना खिलाना आर्थिक दृष्टि से लाभ्कारी नहीं है। अतः इसकी अपेक्षा पशुओं को पौष्टिक हरा चारा खिलाना अधिक लाभकारी होगा। हरे चारे से पशुओं को आवश्यक समस्त पोषक तत्व कम कीमत पर उपलब्ध कराए जा सकते हैं। परन्तु वर्तमान स्थिति में सम्पूर्ण वर्ष हरा चारा उपलब्ध कराना पशुपालकों के लिए कठिन समस्या है।

उत्तराखण्ड में कृषकों एवं पशुपालकों की आर्थिक स्थिति, कृषि योग्य भूमि की कमी तथा पर्वतीय क्षेत्रों की विशिष्ट जलवायु की वजह से कृषि योग्य क्षेत्र में हरे चारे को उगाना सम्भव नहीं है।

पर्वतीय क्षेत्रों के लिए बहुवर्षीय चारा घासें अत्यन्त उपयोगी हो सकती है, क्योंकि इन्हें कृषि भूमि के अतिरिक्त गोचर, वनों, उद्यानों तथा बंजर भूमि में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। पर्वतीय क्षेत्र में ऐसी भूमि का क्षेत्रफल लगभग ८० प्रतिशत है।

पर्वतीय क्षेत्र म सम्पूर्णवर्ष पौष्टिक हरा चारा उत्पादन करने के सम्बन्ध में चारा अनुसधान प्रक्षेत्र भैंसवाड़ा (अल्मोड़ा) तथा क्षेत्रीय पशुधन अनुसंधान केन्द्र पशुलोक ऋषिकेश (देहरादून) पर विगत २० वर्षों से शोध एवं विकास कार्य किया जा रहा है। इन दोनों अनुसंधान केन्द्रों से प्राप्त परिणामों को उत्तराखण्ड के विभिन्न पशुधन प्रक्षेत्रों, वन पंचायतों, जलागम क्षेत्रों तथा भूमि सरक्षण विभाग द्वारा स्थापित जल–समेट क्षेत्रों में दुहराया गया।

सभी प्रक्षेत्रों, केन्द्रों तथा जल–समेट क्षेत्रों से प्राप्त परिणामों के आधार पर श्री आर०एस० टोलिया, तत्कालीन सचिव, उत्तराखण्ड विकास विभाग, उ०प्र० शासन लखनऊ के निर्देश पर वर्ष १९९३–९४ में "उत्तराखण्ड चारा घास एवं बीज उत्पादन की रोजगार परक योजना" तैयार कर श्री युगान्धर, सचिव, ग्राम्य विकास विभाग, भारत सरकार नई दिल्ली को प्रस्तुत किया गया है। श्री आर०एस० ओलिया से मात्र १५ मिनट के विचार विमर्श के बाद श्री युगान्धर, सचिव, ग्राम्य विकास विभाग, भारत–सरकार ने उक्त योजना को स्वीकृति प्रदान कर दिया तथा योजना की पूर्व प्रस्तावित अवधि ५ वर्ष से घटाकर ३ वर्ष में पूर्ण करने के लिए प्रशासनिक स्वीकृति प्रदान कर दिया है।

भारत सरकार द्वारा चारा बीज उत्पादन की इस योजना के लिए अभिनव

जवाहर रोजगार योजना मद के अन्तर्गत रू० २६४.०० लाख की वित्तीय स्वीकृति प्रदान कर दिया गया है। इस योजना में ८० प्रतिशत धनराशि भारत–सरकार तथा २० प्रतिशत मैयचिंग उनुदान उ०प्र० शासन द्वारा निर्धारित किया गया है। परियोजना का संचालन परियोजनदेशक श्री हरिशंकरसिंह द्वाराकिया जा रह परियोजनका प्रगति विवरण इस प्रकार है –

४. योजना इस वर्ष ६४-६५ की उपलब्धि

वर्ष १९९४–९५ के लिये योजना का वित्तीय लक्ष्य रू० ६०.०० लाख निर्धारित किंया गया था, जिसके विपरीत वर्ष के अन्तर्गत अभी तक मात्र शासन द्वारा रू० ४३.७५ लाख की धनराशि अवमुक्त की गई है। योजना के निर्धारित भौतिक लक्ष्य के अनुसार प्रदर्शन/प्रशिक्षण/बीज उत्पादन इकाई की स्थापना (२२ इकाई), कृषक बीज उत्पादन इकाई (१२० इकाई), मिनिकिट्स वितरण (संख्या–८००), कृषक प्रशिक्षण (संख्या–१२००) निष्पादित किया जाना था।

उपलब्ध धनराशि के अन्तर्गत १२० कृषक पौधालयों में तथा सभी २२ बीज उत्पादन इकाईयों में कार्य प्रारम्भ करा दिया गया था। सम्बन्धित संस्थाओं को प्रथम एवं द्वितीय चरण की धनराशि अवमुक्त कर दी गई थी। इस प्रकार कुल २८० हैक्टेंयर क्षेत्र में कार्य प्रारम्भ करा दिया गया था।

वर्ष के अन्तर्गत शोध एवं साहित्य प्रकाशन कार्य के अन्तर्गत २२ तकनीकी पत्र प्रकाशित किए गए तथा घासों के विकास संबंधी कई शोध योजनाओं पर कार्य भैंसवाड़ा फार्म तथा पशुलोक प्रक्षेत्र में प्रगति पर है।

उत्तराखण्ड चारा घास एवं बीज उत्पादन परियोजना के अर्न्तगत घास बीजों की आपूर्ति/वितरण

कुमाऊँ मण्डल - वर्ष १९९५-९६

क्र० सं०	जनपद	दोलनी (किग्रा०)	गच्छी (किग्रा०)	ब्रोम (किग्रा०)	राई/ (किग्रा०)	क्लोवर (किग्रा०)	अन्य (किग्रा०)	योग (किग्रा०)
१.	अल्मोड़ा	९५.००	७०.००	६०.००	७०.००	५.००	–	३००.००
२.	नैनीताल	१८.००	८.००	१०.००	११६.००	३.००	–	१५८.००
३.	पिथौरागढ़	७०.००	६३.००	५५.००	५०.००	२.००	–	२४०.००
	योग	१८३.००	१४१.००	१२५.००	२३६.००	१०.००	–	६९८.००

गढ़वाल मण्डल वर्ष १९९५-९६

क्र० सं०	जनपद	दोलनी (किग्रा०)	गच्छी (किग्रा०)	ब्रोम (किग्रा०)	राई/ (किग्रा०)	क्लोवर (किग्रा०)	अन्य (किग्रा०)	योग (किग्रा०)
१.	देहरादून	—	—	—	—	—	५०.००	५०.००
२.	टिहरी	११३.००	५१.००	३४.००	१२२.००	—	—	३२०.००
३.	पौड़ी	—	—	—	—	—	—	—
४.	चमोली	१५.००	६.००	१५.००	२०.००	४.००	—	६०.००
५.	उत्तरकाशी	४०.००	३४.००	—	८०.००	—	—	१५४.००
	योग	१६८.००	६१.००	४६.००	२२२.००	४.००	५०.००	५८४.००
	महायोग	३५१.००	२३२.००	१७४.००	४६१.००	१४.००	५०.००	१२८१.००

चारा अनुसंधान प्रदेश भैंसवाड़ा को प्रगति - वर्ष १९९४-९५, ९५-९६ (माह अक्टूबर १९९५ तक)

वर्ष १९९४–९५ के लिये योजना का वित्तीय लक्ष्य रू० ६०.०० लाख निर्धारित किया गया था, जिसके विपरीत वर्ष के अन्तर्गत अभी तक मात्र शासन द्वारा रू० ४३.७५ लाख की धनराशि अवमुक्त की गई है। योजना के निर्धारित भौतिक लक्ष्य

क्रम सं०	मद विवरण	प्रगति विवरण वर्ष १९९४–९५	वर्ष १९९५–९६
	उत्पादन		
१.	घास बीज का उत्पादन (कुण्टल में)	८.३२	१२.६५
२.	चारा घास की जड़ों का उत्पादन (संख्या)	२१,३६,२००	१,००,०००
३.	चारा पौध उत्पादन (संख्या)	१,२८,३७७	२२,७००
४.	हरा चारा उत्पादन (कुण्टल में)	१३१२	१२०.००
५.	सूखी घास उत्पादन (कुण्टल में)	३१०.००	१००.००
	कृषक प्रशिक्षण		
१.	महिला (संख्या)	२१८	११३
२.	पुरूष (संख्या)		

अल्मोड़ा जनपद में साक्षरता एवं उत्तर साक्षरता कार्यक्रम की प्रगति

जनपद अल्मोड़ा में राष्ट्रीय साक्षरता मिशन की स्वीकृति के अनुसार सम्पूर्ण साक्षरता अभियान "ज्योति पर्व" के रूप में अक्टूबर ६२ से आरम्भ किया गया। जनपद में १५–४५ वय वर्ग के निरक्षरों को कार्यात्मक साक्षरता प्रदान करने के उद्देश्य से यह अभियान १४ विकास खण्डों में तीन चरणों में संचालित किया गया। सर्वेक्षण के अनुसार जनपद में १५–४५ वय वर्ग के कुल निरक्षरों की संख्या निम्नवत् थी।

(१) कुल निरक्षण ११६३८२ (२) पुरूष १७४७७

(३) अनुसूचित जाति ३८८८४ (५) अनुसूचित जन जाति ४४६

अभियान के सफल संचालन के लिए जनपद स्तर पर जिलाध्किारी की अध्यक्षता में जिला साक्षरता समिति, विकास खण्ड स्तर पर १४ विकास खण्डों में विकास–खण्ड साक्षरता समितियां, न्याय पचायत स्तर पर ४२ परिचालन केन्द्र स्तरीय समितियां तथा ग्राम स्तरपर ३००२ ग्राम साक्षरता समितियां बनाई गई। २ नगर क्षेत्रों बागेश्वर द्वाराहाट में भी साक्षरता समितियां गठित की गई है।

राष्ट्रीय साक्षरता मिशन द्वारा निर्धारित मानक के अनुसार वाहय मूल्यांकन दल द्वारा डा० मुश्ताक अहमद सदस्य राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के निर्देशन में अप्रैल/मई में वाहय मूल्यांकन कार्य सम्पन्न किया गया। इस प्रकार जनपद का कुल साक्षरता प्रतिशत ४०.३० रहा मूल्यांकन दल ने जनपद की विषम भौगोलिक एवं आर्थिक दृष्टि को देखते हुए इस उपलब्धि को सन्तोाजनक माना है।

जनपद में साक्षरता के मूल्यांकन की संस्तुति के आधार पर मानव संसाध्‍ान विकास मंत्रालय भारत सरकार द्वारा २२ मार्च ६५ के अनुसार उत्तर साक्षरता कार्यक्रम को दिसम्बर ६६ तक स्वीकृति प्रदान की है। उत्तर साक्षरता कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य नव साक्षरों के अन्दर जीवन कौशलों का विकास करना है। इसका उद्देश्य केन्द्र छोड़ने वाले और पंजीकृत न हो जाने वाले निरक्षरों को पनुः साक्षरता के घेरे में लाना भी है। सुदृढ़ करते हुए अध्ययन की ओर पेरित करना तथा "ज्ञान गंगा" की सहायता से प्राथमिक शिक्षा का स्तर उपलब्ध कराना भी इसका प्रमुख उद्देश्य है। इस हेतु सभी राजस्व ग्रामों में नव–साक्षर क्लबों क गठन किया गया है।

मध्यमिक एवं बेसिक शिक्षा विभग तथा जनपद के अन्य विभाग चिकित्सा राजस्व, विकास, दुग्ध, बाल–विकास आंगनबाड़ी व नेहरू युवा केन्द्र को कार्यक्रम से जोड़ने व ग्राम अंगीकृत करने हेत सम्पर्क किया गया है। अब तक की सूचना के आधार ~~ लगभग २००० ग्रामों को साक्षर करने हेतु अंगीकृत करने हेतु सम्पर्क

१. कैसे स्वस्थ फसल उगाए।

२. नाशीजीवों के प्राकृतिक शत्रुओं अर्थात मित्र कीटों की कैसे रक्षा की जाये एवं नाशीजीवों की वृद्धि पर निगाह रखी जा सके।

३. प्राकृतिक-जैविक पर्यावरण का विश्लेषण करने की दृष्टि से वे अपने खेतों की समीक्षा कर सकें।

४. फसल सुरक्षा उपाय अपनाने के पूर्व खेत की अच्छाइयों एवं खराबियों की जानकारी रख सकें।

५. परम्परागत खेती विधियों की अच्छाइयों को वैज्ञानिक दृष्टि से मान्य होने पर उनमें यथेष्ट सुधार करके प्रयोग में लाए।

६. कृषकों तथा प्रसार कार्यकर्ताओं में खेतों की स्थिति के ज्ञान के आधार पर उचित कार्यक्रम अपनाने का निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना।

पर्वतीय क्षेत्र में पशु नस्ल सुधार योजना

पर्वतीय क्षेत्र में भारत जर्मन परियोजना के अन्तर्गत साड केन्द्र एवं अति हिमीकृत सीमन विधायन प्रयोगशाला की स्थापना भैंसवाड़ा फार्म (अल्मोड़ा) में १७ जनवरी १६७६ को की गयी, इस केंन्द्र में शुद्ध जर्सी नस्ल के साड रखे गये हैं। जिनसे अतिहिमीकृत सीमन उत्पादित करके सुरक्षित रखा जाता है।

इस बुल स्टेशन के प्रभारी अधिकारी वरिष्ठ पशु चिकित्सक डॉ० के०के० पाठक से सफल निर्देशन में इस प्रयोगशाला में अतिहिमीकृत सीमन का उत्पादन हो रहा है जिसका प्रत्यारोपण कुमाऊँ मण्डल के दुधारू गायों में कराकर उनकी नस्ल सुधार कार्यक्रम चलाया जा रहा है ताकि अच्छी नस्ल के पशुधन का विकास होकर पहाड़ में दुग्ध व्यवसाय में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया जा सके।

इस योजना से पर्वतीय क्षेत्र में शंकर नस्ल के पशुओं के उत्पादन में वृद्धि होने के साथ–साथ दुग्ध उत्पादन में भी वृद्धि हुईहै। अतिहिमीकृत सीमन उत्पादन विधि से सीमन को ८ से ६ वर्ष तक सुरक्षित रखा जा सकता है। अतिहिमीकृत वीर्य को तरल नत्रजन में डुबोकर रखा जाता है जिसके लिए इस परियोजना में एक तरल नत्रजन संपंत्र पाताल देवी (अल्मोड़ा में स्थापित किया गया है। इस संयत्र से तरल नत्रजन की आपूर्ति अल्मोड़ा, पिथौरागढ़ व दुग्ध उत्पादन सहकारी समितियों पर की जा रही है। इसके साथ ही नैनीताल जनपद व आई०वी०आर०आई० मुक्तेश्वर को भी आवश्यकता पड़ने पर इसकी आपूर्ति की जाती है। इस योजना के तहत जनपद अल्मोड़ा में ६६ कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र स्थापित किए गये हैं। योजना के तहत अतिहिमीकृत वीर्य स्टाज के उत्पादन का वार्षिक लक्ष्य ८० हजार के विपरीत स्टेशन में ६० हजार से अधिक स्टाज खुराक अतिहिमीकृत सीमन का उत्पादन प्रतिवर्ष किया जा रहा है। इस सीमन का वितरण अल्मोड़ा पिथौरागढ़, नैनीताल, बिजनौर, मेरठ, श्यामपुर ऋषिकेश (देहरादून) तथा अल्मोड़ा जनपद की दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियों को किया जाता है। यह योजना पहाड़ों में दुधारू पशु नस्ल सुधार सुधार को वरदान साबित हो रही है। प्रदेश के इस तरह के छः केन्द्रों में पशु पालन विभाग का यह प्रमुख जनउपयोगी केन्द्र है। जिसका कुमाऊँ मण्डल के पशुपालनों व कृषकों को मिल रहा है। इसके विस्तार व सुदृढ़ीकरण की योजना पर स्टेशन प्रभारी डॉ० द्वारा कार्य किया जा रहा है।

****

अंधेरे जीवन में आशा की किरणें

मा० प्रधानमंत्री द्वारा घोषित राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम का जनपद अल्मोड़ा में कार्यान्वयन प्रारंभ

इस महत्वपूर्ण राष्ट्रीय कार्यक्रम के मुख्य तीन अवयव हैं

1. राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना — इस योजना में 65 वर्ष से अधिाक आयु के ऐसे व्यक्ति जिनकी समस्त स्रोतों से मासिक आय रू. 225-00 से कम हैं, कोई पुत्र या आश्रय देने वाला न हों, का चयन उपजिलाधिकारी की अध्यक्षता में गठित समिति द्वारा किया जा रहा है। योजनान्तर्गत जनपद का लक्ष्य 6182 व्यक्तियों के चयन का है, जिसके सापेक्ष 4765 व्यक्तियों का चयन हो चुका है। जनपदीय लक्ष्य का 20% चयन शहरी क्षेत्रों से एवं 80% चयन ग्रामीण क्षेत्रों से किया जाना हैं। 65-60 आयु वर्ग के चयनित व्यक्तियों को प्रदेश सरकार की संचालित किसान पेंशन/वृद्धावस्था पेंशन योजना के अन्तर्गत लाभान्वित किया जाएगा। ग्रामीण क्षेत्र में पेंशन की दर रू0 125-0 प्रतिमाह एवं शहरी क्षेत्र में रू0 100-00 प्रतिमाह निर्धारित हैं।

2. **राष्ट्रीय पारिवारिक लाभ योजना** — गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन रकने वाले परिवार के मुख् कुमाऊँ व्यक्ति की सामान्य मृत्यु होने की दशा में रू. 5,000;00 की धनराशि का एकमुश्त अनुदान प्राविधानित है। मृतक व्यक्ति की आयु 18 से 65 वर्ष के बीच होनी चाहिए। इस योजना का ला पाने के लिए आवेदक को मृत्यु सम्बन्धी प्रमाण पत्र एवं असामान् मृत्यु हेतु मृत्यु प्रमाण पत्र के साथ पोस्टमार्अम रिपोर्ट/प्रथम सूचन रिपोर्ट की छाया प्रति उपलब्धा करानी आवश्यक है। इस म जनपदीय लक्ष्य 500 निर्धारित है। 15 अगस्त 1995 के पश्चा घटित योजनाओं पर ही यह लाभ मिलेगा। अब तक 179 व्यक्तिय को लाभान्वित किया गया है जिनको 10.4 लाख का भुगतान कि गया है।

3. **राष्ट्रीय मातृत्व लाभ जिसकी : योजना** — गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवार की ऐसी महिला उम्र 19 वर्ष या अधिक हो को प्रथम दो बच्चों के जन्म धारण करने पर रू. 300.00 एकमुश्त आर्थिक सहायना दी जायेगी। अनुदान की राशि प्रसव काल से दो-तीन माह पूर्व ही 8-12 सप्ताह) देय हो जाती है। इस योजना में मार्च 1995 तक 5564 महिलाओं को लाभान्वित करने का लक्ष्य निधार्रितकिया गया है। योजनाओं से सम्बन्धित आवेदन पत्र प्रत्येक तहसील, विकास खण्ड, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर उपलब्ध कराये गए हैं। इसके सम्बन्ध में और अधिक जानकारी जिला समाज कल्याण अधिकारी, अल्मोड़ा के कार्यालय से की जा सकती है।

इन योजनाओं में सर्वाधिक कार्य करने वाली ग्राम सभा/नगर पंचायत को पुरस्कृत करने का प्राविधान भी है।

मुक्तेश्वर चौबे **जिला समाज कल्याण अधिकारी, अल्मोड़ा**	**एन0आर0 गोकर्ण** **मुख्य विकास अधिकारी** **अल्मोड़ा**	**कुमार कमलेश** **जिलाधिकारी** **अल्मोड़ा**

तुम्हारी हिजरत के सारे मौसम गुजर चुके हैं
यहां से आगे की मंजिलों का खयाल छोड़ो
ये मुल्जिमों से सजे कटहरे
किसी नुमाइश के वास्ते हैं
यही बहुत है
सरों पे नफरत भरी हवाओं के साइबां हैं
कि आज सूरज की जर्द आंखों में खून सा है
यहां से आगे जो मोड़ आये
वहीं पे खेमों को गाड़ देना
वहीं पे चीलें तुम्हें मिलेंगी
वहीं पे तुम लोग चींटियों की गिजा बनोगे

—शहरयार